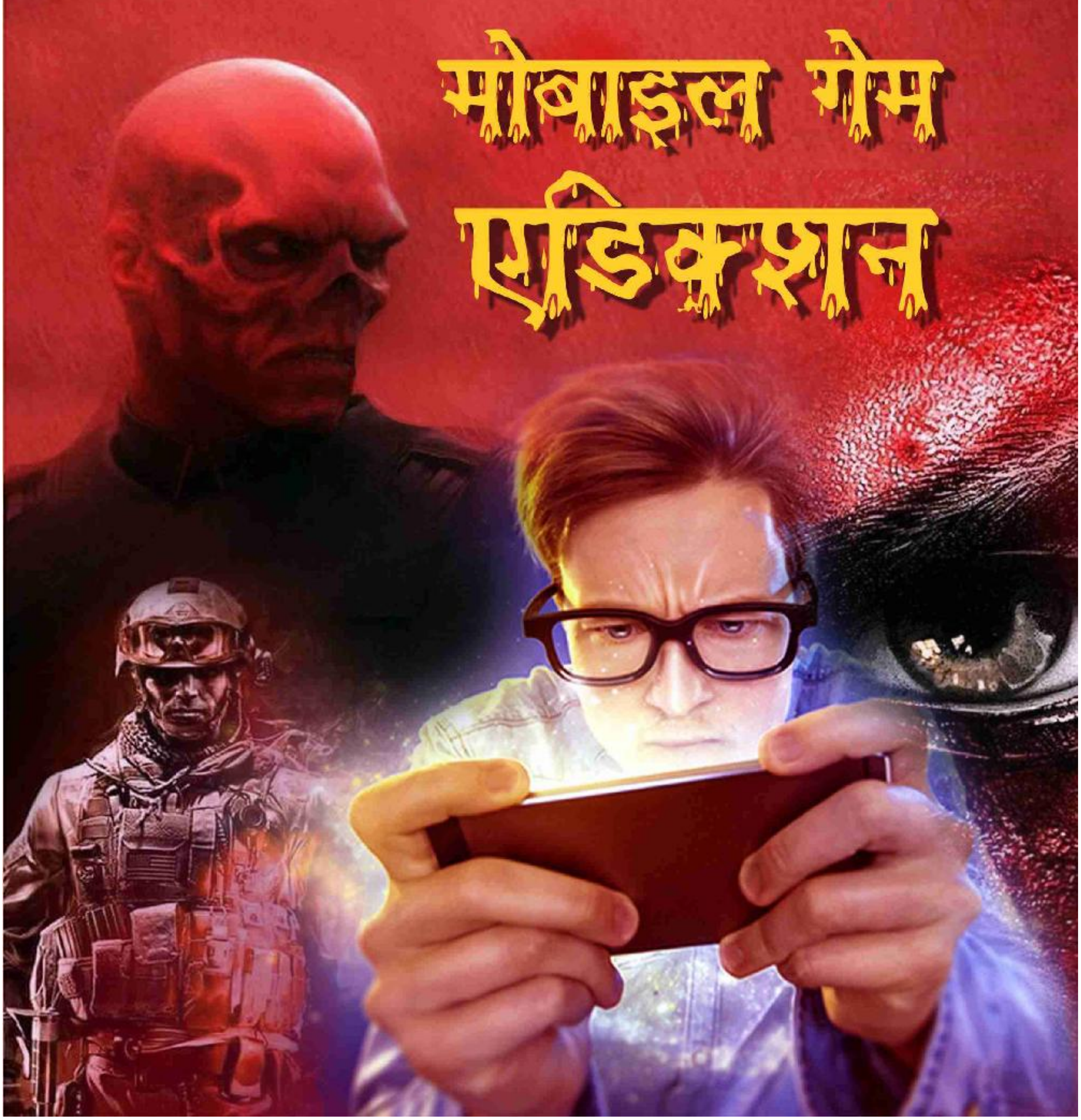
Postal Reg. No. M.P./Bhopal/4-340/2017-19
R.N.I.No. 51966/1989, ISSN 2455-2399
Date of Publication 15th August 2018
Date of posting 15th & 20th August 2018

अगस्त 2018 वर्ष 30 अंक 08 मूल्य ₹ 40

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका



RNI No. 51966/1989
ISSN 2455-2399
www.electroniki.com
अगस्त 2018
वर्ष 30
अंक 8

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका

राष्ट्रीय राजभाषा शील्ड सम्मान, रामेश्वर गुरु पुरस्कार, भारतेन्दु पुरस्कार तथा सारस्वत सम्मान से सम्मानित

आज के विकसित अथवा तेज विकास दर वाले विकासशील देशों में जो परिवर्तन हुए हैं, वे जीवन और प्रकृति की वैज्ञानिक तथा तार्किक दृष्टि को स्वीकार करने के कारण ही हुए हैं।

– प्रशांतचंद्र महालनोबीस



इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए 289

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका

क्रम

आलेख

भारत का परमाणु परीक्षण
● शुकदेव प्रसाद /05

अलविदा अलन बीन
● कालीशंकर /10

मीठा इतना खास क्यों?
● डॉ.कृष्ण कुमार मिश्र /15

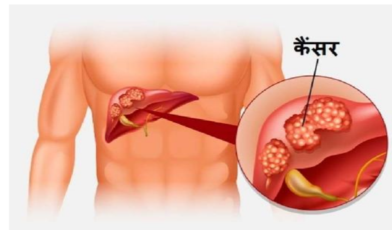
पर्यावरण संरक्षण हेतु ठोस कार्ययोजना जरूरी
● शंशाक द्विवेदी /20

अग्नि-5 सफलता की महागाथा
● प्रमोद भार्गव / 24

रासायनिक कीटनाशक और विकल्प
●डॉ. मनीष मोहन गोरे /27

मोबाइल गेम एडिक्शन
●विजन कुमार पाण्डेय /31





एक दुर्लभ रोग : न्यूरो एंडोक्राइन ट्यूमर
● डॉ.विनीता सिंघल /35

एक चुनौतीपूर्ण रोग : पुरुषों में स्तन कैंसर
● डॉ.शुभ्रता मिश्रा /40

कॅरियर

बायोस्टैटिस्टिक्स
● संजय गोस्वामी /44

विज्ञान कथा

बैलों वाली कार
● डॉ.अरविंद दुबे /48

विज्ञान इस माह

भविष्य के लिए ऊर्जा
● इरफान ह्यूमन /53

संस्थागत समाचार/56

पत्र व्यवहार का पता

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

आईसेक्ट लिमिटेड, स्कोप कैम्पस, एन.एच.–12, होशंगाबाद रोड, मिसरोद, भोपाल–462047

फोन : 0755-6766166 (डेस्क), 0755-6766101, 0755-2432801 (रिसेप्शन), 0755-6766110(फैक्स)

e-mail : electroniki@electroniki.com, website : www.electroniki.com वार्षिक शुल्क : 480/- प्रति अंक : 40/-

'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखक के हैं। उनसे संपादक की सहमति होना आवश्यक नहीं है।

सभी विवादों का निबटारा भोपाल अदालत में किया जायेगा।

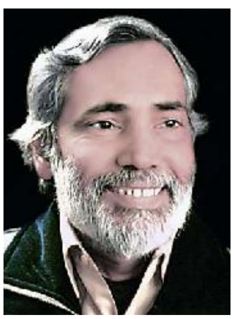
स्वामी, आईसेक्ट लिमिटेड के लिये प्रकाशक व मुद्रक सिद्धार्थ चतुर्वेदी द्वारा आईसेक्ट पब्लिकेशन्स, 25 ए, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन-1, एम.पी.नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित व आईसेक्ट लिमिटेड, स्कोप कैम्पस एन.एच.-12 होशंगाबाद रोड, मिसरोद, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक- संतोष चौबे।

आलेख

भारत का परमाणु परीक्षण



शुकदेव प्रसाद



समकालीन विज्ञान लेखकों में शुकदेव प्रसाद का नाम अग्र पंक्ति में शुमार है। वे पिछले चार दशकों से विज्ञान लेखन कर रहे हैं। देश विदेश में वे अपने विज्ञान लेखन के लिए उन्हें कई पुरस्कार और सम्मान प्रदान किये गये हैं। सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार से सम्मानित वे एक मात्र भारतीय विज्ञान लेखक हैं। कई विज्ञान किताबों की रचना के साथ ही उन्होंने विज्ञान ग्रंथों और संचयन का संपादन किया है। शुकदेव प्रसाद इलाहाबाद में रहते हैं।

जोधपुर और जैसलमेर के बीच पोखरण क्षेत्र। पाकिस्तान की सीमा से कोई 150 किलोमीटर दूर। 18 मई, 1974 की प्रातःकालीन बेला। थोड़ी देर में विश्व के इतिहास में नया पृष्ठ जुड़ने जा रहा था। भारत के मूर्धन्य परमाणु वैज्ञानिक दिलों की धड़कन थामे खड़े थे। जैसे ही समय हुआ, शीर्ष वैज्ञानिकों ने विस्फोट करने के लिए अपने कनिष्ठ साथियों से बटन दबाने को कहा। बटन दबाते ही विस्फोट हुआ और उसके दृश्य को वैज्ञानिकों ने सांस रोककर टेलीविजन पर देखा। भारतीय परमाणु ऊर्जा आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष डॉ. होमी सेठना हर्षोल्लसित होकर फूट पड़े 'हमने इसे कर दिया', खुशी में झूमकर सारे वैज्ञानिकों ने एक दूसरे को अलिंगबद्ध कर लिया और बधाई दी। यह रही भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा 18 मई, 1974 को राजस्थान के पोखरण क्षेत्र में प्रातः 8 बजकर 5 मिनट पर की गयी सफल भूमिगत परमाणु परीक्षण की झांकी। इस सफल परमाणु परीक्षण की जानकारी एक वरिष्ठ वैज्ञानिक ने श्रीमती इंदिरा गांधी को दूरभाष पर दी- 'बुद्ध मुस्कराये' और इस प्रकार 'ऑपरेशन डिजर्ट बुद्ध' पूर्णतः सफल रहा जो बुद्ध पूर्णिमा के दिन आयोजित किया गया था।

भारत के इस प्रथम भूमिगत परमाणु परीक्षण से देश के परमाणु-युग के प्रणेता डॉ. होमी जहांगीर भाभा, उनके बाद परमाणु अनुसंधानों की बागडोर संभालने वाले विज्ञानी डॉ. साराभाई और भूतपूर्व प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू के सपने साकार हुए। इस सफल परमाणु विस्फोट के द्वारा भारत ने विश्व के पाँच शक्ति राष्ट्रों के परमाणु एकाधिकार को समाप्त करके विश्व में नया कीर्तिमान स्थापित किया।

नाभिकीय संघान के क्षेत्र में इस विशिष्ट तथा गौरवपूर्ण उपलब्धि के लिए हमारे भारतीय वैज्ञानिक विशेष कर भारतीय परमाणु ऊर्जा आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष डॉ. एच.एन.सेठना एवं भाभा अनुसंधान केंद्र, ट्रांबे के तत्कालीन निदेशक डॉ. राजा रामण्णा, जिनके कुशल निर्देशन में भारत का प्रथम भूमिगत परमाणु परीक्षण सफल रहा, अविस्मरणीय है। इस गोपनीयता की विस्फोट के पहले किसी को खबर तक न हुई, यह उल्लेखनीय तथ्य है। यहाँ तक कि डॉ. सेठना की पत्नी तक को नहीं। डॉ. सेठना के रात-रात भर घर से गायब रहने के कारण उनके और उनकी पत्नी के बीच विवाद भी



हुआ। इस सुखद घटना का प्रत्येक भारतवासी ने सहर्ष स्वागत किया। भारतीय विज्ञान की एक और गौरवमयी उपलब्धि।

भूमिगत परीक्षण ही क्यों?

उल्लेखनीय है कि जल या वायुमंडल में परमाणु परीक्षण से रेडियोधर्मिता बहुत दूर तक फैल जाती है। विस्फोट से निकले रेडियो विकिरण लंबी अवधि तक जीवन के लिए बहुत खतरनाक होते है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण सामने है। अमेरिका द्वारा जापान पर डाले गए बम विस्फोटों के द्वारा निकले हुए तीव्र विकिरणों का असर अभी भी नहीं समाप्त हुआ है।

पीढ़ी एकान्तरण द्वारा यह सब विचित्रताएं आने वाली पीढ़ियों में अर्जित होती रहती हैं। इस घटना से आप विस्फोट के घातक परिणामों का अन्दाजा लगा सकते हैं लेकिन भूमिगत परीक्षणों में ऐसी बात नहीं है। इन बातों को देखते हुए परमाणु परीक्षण प्रतिबंध समझौता हुआ। भारत ने 1963 के आंशिक परीक्षण निषेध संधि (Partial Test Ban Treaty-PTBT) पर हस्ताक्षर किया था जिसके अंतर्गत वायुमंडल या जल में नाभिकीय परीक्षण निषिद्ध है। भारत ने 1970 के नाभिकीय अप्रसार निषेध संधि (Nuclear Non Proliferation Treaty-NPT) पर हस्ताक्षर नहीं किया था क्योंकि इस सिलसिले में भारत ने अन्य विकासशील देशों के साथ यह आपत्ति उठायी थी कि महाशक्तियाँ नाभिकीय अनुसंधान के क्षेत्र में एकाधिकार जमाए रखकर विकासशील राष्ट्रों को विज्ञान के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र से वंचित रखना चाहती हैं।

भारतीय परमाणु विस्फोट में प्लूटोनियम का प्रयोग किया गया। राजस्थान में दस से पंद्रह किलो टन क्षमता वाला विस्फोट किया गया। नागासाकी (जापान) पर गिराए गए बम से यह विस्फोट अधिक है। इस विस्फोट के सिलसिले में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें विस्फोट (Explosion) के बदले अंतःस्फोट (implosion) प्रक्रिया का उपयोग किया गया अर्थात् यह परीक्षण जमीन के भीतर किया गया था।

अतः भारत ने अपने वायदे के मुताबिक भूमिगत परमाणु परीक्षण किया क्योंकि समझौते में भूमिगत परीक्षण के लिए मनाही नहीं थी। इस संबंध में डॉ. एच.एन. सेठना ने कहा था कि 'भारत पहला देश है जिसने अपना प्रथम परमाणु विस्फोट भूमिगत किया है। हमने ऐसा इसलिए किया कि हम यह नहीं चाहते थे कि परिस्थितियों में बाधा पड़े तथा रेडियो विकिरणशीलता में और वृद्धि हो।'

भारत के इस विस्फोट के लिए तैयारी में चार वर्ष का समय लगा जब कि अमेरिका, ब्रिटेन, पूर्व सोवियत संघ, फ्रांस और चीन को इस प्रकार की तैयारी में सात से दस वर्ष तक का समय लगा। इससे स्पष्ट है कि भारत की तकनीकी दक्षता इन राष्ट्रों से काफी आगे है। एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि भारत के परमाणु विस्फोट से रेडियो विकिरण की मात्रा बहुत कम हुई थी। यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि उक्त परीक्षण पूर्णतया भारत में प्राप्त संसाधनों और स्रोतों से ही किया गया था। भारतीय तकनीकी आत्मनिर्भरता का यह गौरवशाली उदाहरण है।

परमाणु विस्फोट का विवरण



विखंडनीय पदार्थ राजस्थान की मरुभूमि में 'एल' आकार के सौ मीटर एक गहरे गड्ढे में रखा गया था जो चार किलोमीटर दूर स्थित नियंत्रण कक्ष से करीब दस भूमिगत तारों से जुड़ा था। इनमें से कुछ तार विभिन्न यंत्रों से जुड़े थे जिनके द्वारा परीक्षण के विभिन्न प्रभावों, ध्वनि तरंगों, दबाव, भूस्खलन, कंपन आदि को मापा गया। विस्फोट-स्थल लगातार दूरदर्शन कैमरा की परिधि में रहा और वैज्ञानिक संपूर्ण गतिविधि को देखते रहे।

भारतीय परमाणु विस्फोट में प्लूटोनियम का प्रयोग किया गया। राजस्थान में दस से पंद्रह किलो टन क्षमता वाला विस्फोट किया गया। नागासाकी (जापान) पर गिराए गए बम से यह विस्फोट अधिक है। इस विस्फोट के सिलसिले में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें विस्फोट (Explosion) के बदले अंतःस्फोट (implosion) प्रक्रिया का उपयोग किया गया अर्थात् यह परीक्षण जमीन के भीतर किया गया था।

लगभग बीस किलोग्राम प्लूटोनियम-239 को एक-एक किलोग्राम वाली अलग-अलग पेटियों में रखकर इनको एक बड़े धातु के गोले में लगाया गया। फिर गोले के अन्दर दूर से विद्युत कंट्रोल या स्विच द्वारा रासायनिक विस्फोट किया गया, जिसमें प्लूटोनियम की पेटियां एक सेकंड के हजारवें हिस्से में गोले के बीच में आ जाये। ऐसा इसलिए किया गया कि प्लूटोनियम 'क्रिटिकल द्रव्यमान' (Critical mass) पर आ जाये और तुरंत विस्फोट हो जाये। सामान्तया विखंडनीय पदार्थ का विस्फोट तब तक नहीं होता, जब तक कि उसकी एक निश्चित मात्रा (क्रिटिकल मास) नहीं बनती। इसीलिए कई हिस्सों को आपस में भिड़ाकर विस्फोट कराया जाता है। इस प्रकार से गोले के अंदर रासायनिक विस्फोट करके प्लूटोनियम को विस्फोट की स्थिति तक पहुँचाने की प्रक्रिया को अंतःविस्फोट कहते हैं। जब प्लूटोनियम का 'क्रिटिकल द्रव्यमान' एक शृंखलाबद्ध प्रक्रिया जारी करता है तो अपार ऊर्जा निकलती है।



विस्फोट के बाद

भारत में किए गए भूमिगत परमाणु-परीक्षण से उस क्षेत्र की भूमि का धरातल परिवर्तित हो गया। परीक्षण स्थल पर एक अत्यंत सुन्दर पहाड़ी निर्मित हो गई। यह बात एक रेडियो साक्षात्कार में भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के तत्कालीन निदेशक डॉ. राजा रामण्णा ने कही-'विस्फोट होने के बाद भूमि के पत्थरों में भारी उथल-पुथल हुई। यह सब हमने चार किलोमीटर से देखा। निरीक्षण विभाग से यह रिपोर्ट पाकर कि उक्त क्षेत्र में रेडियोधर्मी तत्व कम हो रहे हैं, तब हम लोग सौ मीटर की दूरी तक जा सके। उक्त दूरी से हम लोगों ने इस नवनिर्मित मनोहारी पर्वत श्रेणी का अवलोकन किया।'

पाँच विस्फोटों की शृंखला भारत ने 11 मई और 13 मई, 1998 को उसी पोखरण क्षेत्र में पूरी की जहाँ चौबीस वर्ष पहले (18 मई, 1974) भारत का प्रथम परमाणु परीक्षण किया गया था। यह भी एक रोचक संयोग है कि 18 मई, 1974 को बुद्ध पूर्णिमा का दिन था और इस बार भी परीक्षणों के लिए बुद्ध पूर्णिमा का दिन 11 मई, 1998 को चुना गया।

विस्फोट के तुरंत बाद दो हेलीकाप्टरों द्वारा संपूर्ण स्थल का निरीक्षण किया गया। हेलीकाप्टर तीस फुट ऊंचाई पर पड़े। महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं के चित्र भी लिये गये। ज्ञातव्य है कि इतने बड़े विस्फोट से बहुत कम रेडियोधर्मिता पैदा हो सकी। उल्लेखनीय है कि परमाण्विक परीक्षण स्थल से एकत्र की गयी वस्तुओं के प्राथमिक परीक्षण से ज्ञात हुआ कि वे विकिरणधर्मी नहीं हुईं हैं। ट्रांबे में परमाणु वैज्ञानिकों ने इन नमूनों का रासायनिक विश्लेषण किया जिससे पता लगा कि उनमें उतनी ही विकिरणधर्मिता है जितनी सामान्यतः अन्यत्र रहती है। इस आरम्भिक छानबीन से डॉ. सेठना द्वारा उसी दिन दिल्ली में दिए गए उस वक्तव्य की पुष्टि हुई जिसमें कहा गया था कि विस्फोट से विकिरण का प्रभाव नहीं पड़ा। न तो वहाँ की बालू पर इसका प्रभाव पड़ा और न विस्फोट स्थल के तीस मीटर ऊपर वायु पर ही। चौबीस वर्षों के सुदीर्घ अंतराल के बाद भारत ने गहन विचार-विमर्श, अंतरराष्ट्रीय गतिविधियों, पड़ोसी मुल्कों की कूटनीतिक चालों के मद्देनजर अंततः पोखरण में ही बहुप्रतीक्षित विस्फोट संपन्न किये।



पाँच विस्फोटों की शृंखला भारत ने 11 मई और 13 मई, 1998 को उसी पोखरण क्षेत्र में पूरी की जहाँ चौबीस वर्ष पहले (18 मई, 1974) भारत का प्रथम परमाणु परीक्षण किया गया था। यह भी एक रोचक संयोग है कि 18 मई, 1974 को बुद्ध पूर्णिमा का दिन था और इस बार भी परीक्षणों के लिए बुद्ध पूर्णिमा का दिन 11 मई, 1998 को चुना गया।

1974 में किए गये परीक्षण का कूट था- 'बुद्ध मुस्कराये'। इसी कूट से देश की शीर्षस्थ वैज्ञानिक ने श्रीमती इंदिरा गांधी को परमाणु परीक्षण की सफलता की सूचना दी थी।

इस बार के परीक्षणों को ऑपरेशन शक्ति-98 (11-13 मई, 98 पाँच परीक्षण) नाम दिया गया। 11 मई, 1998 को किए गए तीन परीक्षणों का कूट क्या था, ज्ञात नहीं पर इस बार भी परीक्षण के लिए बुद्ध पूर्णिमा का दिन चुना गया। यह कैसा त्रासद और मार्मिक प्रकरण है कि विध्वंसक परीक्षणों के लिए बुद्ध और गांधी के देश में 'बुद्ध मुस्कराये' शीर्षक संबोधन का प्रयोग किया जाए?



11 मई, 1998 को राजस्थान की उसी मरुभूमि में पोखरण क्षेत्र में अपराह्न 3:45 बजे भारत ने तीन परमाणु परीक्षण संपन्न किये। इन परीक्षणों की घोषणा प्रधान मंत्री ने अपने आवास पर अतिशीघ्रता में बुलाये गये संवाददाता सम्मेलन में की।

इन परीक्षणों का विवरण निम्नवत है–

- विखंडन प्रक्रिया (Fission Device) यानी परमाणु बम जिसकी क्षमता पंद्रह किलोटन थी। यह परीक्षण 18 मई, 1974 वाले परीक्षण के समतुल्य था।
- कम उत्पादक युक्ति (Low Yield Device) जिसकी क्षमता 0.2 से 0.5 किलोटन (सब किलोटन) थी अर्थात् एक किलोटन से कम उत्पादकता थी। इसका उद्देश्य उच्च स्तरीय विध्वंसकता नहीं था। यह परीक्षण एक अल्पशक्ति वाले उपकरण से संपन्न किया गया था।
- ताप नाभिकीय अभिक्रिया (Thermo Nuclear Device) यानी संलयन प्रक्रिया जो हाइड्रोजन बम बनाने में प्रयुक्त की जाती है। इसकी क्षमता 43 किलोटन थी। इस प्रक्रिया में एक धातु खोल के अंदर पहले नाभिकीय विखंडन द्वारा परमाणु बम का विस्फोट किया जाता है जिससे लाखों डिग्री ताप उत्पन्न होता है और इस अति उच्च ताप पर हाइड्रोजन समस्थानिकों- ड्यूटेरियम और ट्रीटियम के बीच संलयन की प्रक्रिया संपन्न होती है। हाइड्रोजन बम के लिए अति उच्च ताप वांछनीय है अतः इस प्रक्रिया को ताप नाभिकीय प्रक्रिया कहते हैं। परमाणु बम में 'क्रांतिक द्रव्यमान' प्राप्त करना वांछनीय है तो हाइड्रोजन बम में 'क्रांतिक ताप' प्राप्त करना आवश्यक है जो लगभग एक करोड़ डिग्री सेल्सियस से भी अधिक होता है। इतनी ऊर्जा परमाणु बम के विस्फोट से जनित होती है फिर इस उच्च तापमान पर हाइड्रोजन-हाइड्रोजन के बीच में संलयन प्रक्रिया (Fusion Reaction) आरंभ हो जाती है और हाइड्रोजन बम सक्रिय (Criticality Attained) हो जाता है। यद्यपि भारत ने दावा किया था कि हमने हाइड्रोजन बम का सफल परीक्षण सम्पन्न कर लिया है लेकिन यह दावा भारत के गौरववर्धन के लिए गया था। डॉ. अब्दुल कलाम और आर. चिदांबरम (परमाणु ऊर्जा आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष) ने इसकी पुष्टि की थी जबकि सैद्धांतिक रूप से यह सच नहीं था। परमाणु बम की क्षमता किलोटन में मापी जाती है और हाइड्रोजन की क्षमता मेगाटन में मापी जाती है। कथित हाइड्रोजन की क्षमता 43 किलोटन थी। यह हाइड्रोजन बम हो ही नहीं सकता था। फलस्वरूप परमाणु ऊर्जा के पूर्व अध्यक्ष डॉ. आयंगर ने एक प्रेस कांफ्रेंस करके समग्र राष्ट्र को बताया कि "They are trying to beefool the nation and themself too" अर्थात् वे राष्ट्र को और स्वयं अपने आपको मूर्ख बना रहे हैं। वस्तुतः इस परीक्षण का उद्देश्य गांधीनगर, गुजरात के प्लाज्मा रिसर्च सेंटर को आंकड़े उपलब्ध कराना था जहाँ पर 'आदित्य' नामक हाइड्रोजन रिएक्टर (फ्यूजन रिएक्टर) की स्थापना की गई है। उसकी क्षमता मात्र पचास लाख डिग्री सेल्सियस ताप उत्पादन की है लेकिन इतने ताप पर फ्यूजन संभव नहीं है, अतः हमने जो कवित हाइड्रोजन बम का परीक्षण सम्पन्न किया था, उसके आंकड़े 'आदित्य' नामक टोवामैक को पहुँचाना था। इसका यही उद्देश्य था।

परीक्षणों के बाद इस बात की पुष्टि हुई कि आस-पास के वायु मंडल में रेडियोधर्मिता के कोई संकेत नहीं हैं। अलबत्ता परमाणु विस्फोट के झटके आस-पास के इलाकों के अतिरिक्त 210 किमी. दूर जोधपुर शहर तक में भी महसूस किये गये। विस्फोट स्थल से मात्र पैंतीस किमी. दूर पोखरण कस्बे में तीव्र आघातों से घरों के बरतन और अन्य सामान गिरने पड़ने लगे। जैसलमेर और बाड़मेर में भी झटके महसूस किये गये थे। ये तीनों विस्फोट धरती के अंदर सौ मीटर नीचे किये गये थे। रेडियोधर्मिता फैलने के संकेत नहीं मिले हैं क्योंकि 1974 में किये गये विस्फोट की तरह ये भी पूर्ण नियंत्रित विस्फोट थे। रिचर स्केल पर इनकी तीव्रता 4०7 मापी गई जो औसत भूकंप जितनी है। तीनों विस्फोट एक साथ किये गये। परीक्षण प्रणालियां एक-एक किलोमीटर की दूरी पर थीं। केवल एक परीक्षण करने से दूसरी प्रणाली पर प्रभाव पड़ सकता था।



परीक्षणों के बाद इस बात की पुष्टि हुई कि आस-पास के वायु मंडल में रेडियोधर्मिता के कोई संकेत नहीं हैं। अलबत्ता परमाणु विस्फोट के झटके आस-पास के इलाकों के अतिरिक्त 210 किमी. दूर जोधपुर शहर तक में भी महसूस किये गये। विस्फोट स्थल से मात्र पैंतीस किमी. दूर पोखरण कस्बे में तीव्र आघातों से घरों के बरतन और अन्य सामान गिरने पड़ने लगे। जैसलमेर और बाड़मेर में भी झटके महसूस किये गये थे। ये तीनों विस्फोट धरती के अंदर सौ मीटर नीचे किये गये थे। रेडियोधर्मिता फैलने के संकेत

नहीं मिले हैं क्योंकि 1974 में किये गये विस्फोट की तरह ये भी पूर्ण नियंत्रित विस्फोट थे। रिचर स्केल पर इनकी तीव्रता 4.7 मापी गई जो औसत भूकंप जितनी है। तीनों विस्फोट एक साथ किये गये। परीक्षण प्रणालियां एक-एक किलोमीटर की दूरी पर थीं। केवल एक परीक्षण करने से दूसरी प्रणाली पर प्रभाव पड़ सकता था। एक साथ परीक्षण न करने पर समुचित आँकड़े भी नहीं मिल सकते थे।

भारतीय परमाणु और रक्षा वैज्ञानिकों ने अपने परमाणु परीक्षणों को ऐसी कुशलता से अंजाम दिया कि अति संवेदनशील अमेरिकी उपग्रहों तक को इनकी भनक नहीं लग सकी भले ही परीक्षणों की जानकारी मिलने पर अमेरिका समेत अन्य परमाणु शक्तियों की नींद उड़ गईं। तीव्र आक्रोश और प्रतिक्रियाओं का दौर अभी ठप भी नहीं हुआ था कि भारत ने राजस्थान की उसी मरुभूमि में 13 मई, 1998 को अपराह्न 12:21 बजे दो और परीक्षण कर डाले।

ये दोनों परीक्षण कम उत्पादकता वाले थे जिनकी क्षमता 0.3 और 0.5 किलोटन थी। चूंकि ये परीक्षण सब किलोटन क्षमता के थे (एक किलोटन से कम) अतः उनके विस्फोट का कम्पन भूकंपमापियों पर नहीं मापा जा सका जबकि 11 मई वाले थर्मो न्यूक्लियर और फिशन परीक्षण का भूकंप मापी यंत्रों पर पठन संपूर्ण धरती पर देखा गया।

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के तत्कालीन निदेशक डॉ. अनिल काकोदकर के अनुसार इन परीक्षणों से कई महत्वपूर्ण एवं उपयोगी आंकड़ें प्राप्त किये गये हैं और अब भारत आवश्यकता पड़ने पर कम्प्यूटर अनुकरण आधृत अपक्रांतिक परीक्षण करने में सक्षम हो गया है।

डी.आर.डी.ओ. के तत्कालीन प्रमुख तकनीकी सलाहकार डॉ.के.संथानम के अनुसार 1974 के परमाणु परीक्षण से इस बार हमने काफी प्रगति कर ली है। वस्तुतः ये परीक्षण क्रमानुसार उत्तरोत्तर उच्चतर तकनीक के परीक्षण हैं जिसके कारण परमाणु बम का आकार और वजन कम किया जा सकता है। सरकारी विज्ञप्ति के अनुसार परीक्षणों का नियोजित कार्यक्रम पूरा हो गया है और अब भारत को और परीक्षण करने की आवश्यकता नहीं है।



13 मई को किये गये परीक्षणों के साथ ही भारत की परमाणु परीक्षण की सुनिश्चित श्रृंखला पूरी हो गयी। वस्तुतः इन परीक्षणों का उद्देश्य अतिरिक्त आंकड़े एकत्र करना था ताकि भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर कम्प्यूटर के द्वारा सुगमतापूर्वक परीक्षण किये जा सकें। परीक्षणों से प्राप्त आंकड़ों का इस्तेमाल करके कम्प्यूटर के जरिये श्रेष्ठतर परमाणु विस्फोटक उपकरण डिजाइन किये जा सकेंगे।

11 मई को किया गया तीसरा कम उत्पादक (लो ईल्ड) परीक्षण तथा 13 मई को किये दो लो ईल्ड परीक्षण 0.2, 0.3 और 0.5 किलोटन क्षमता के थे। इसी नाते उनके विस्फोट का कम्पन भूकंपमापी यंत्रों पर नहीं मापा जा सका। निस्संदेह इन परीक्षणों से भारत ने परमाणु संधान की दिशा में एक लंबी छलांग मारी है और नव कीर्तिमान स्थापित किया है।

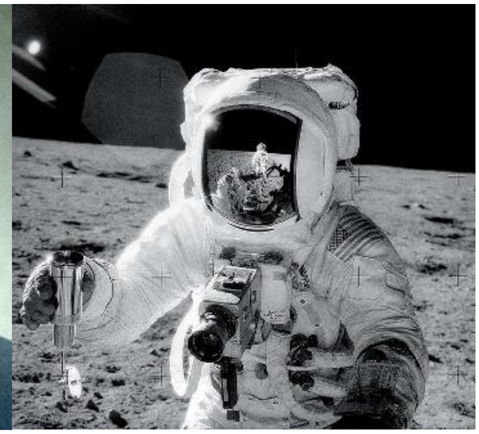
13 मई को किये गये परीक्षणों के साथ ही भारत की परमाणु परीक्षण की सुनिश्चित श्रृंखला पूरी हो गयी। वस्तुतः इन परीक्षणों का उद्देश्य अतिरिक्त आंकड़े एकत्र करना था ताकि भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर कम्प्यूटर के द्वारा सुगमतापूर्वक परीक्षण किये जा सकें। परीक्षणों से प्राप्त आंकड़ों का इस्तेमाल करके कम्प्यूटर के जरिये श्रेष्ठतर परमाणु विस्फोटक उपकरण डिजाइन किये जा सकेंगे। उल्लेखनीय है कि कम्प्यूटर अनुकरण प्रौद्योगिकी (सिमुलेशन) सिर्फ अमेरिका के पास मौजूद थी। इंग्लैंड और फ्रांस एक समझौते के अनुसार अमेरिका से आंकड़ें लेकर कंप्यूटर पर परीक्षण संपन्न करते रहे हैं। सिमुलेशन तकनीक अर्जित करने वाला भारत विश्व का अग्रणी राष्ट्र बन गया है जो सी-डैक (पुणे) के वैज्ञानिकों द्वारा निर्मित सुपर कम्प्यूटर 'परम-10,000' द्वारा यह प्रक्रिया आसानी से संपन्न कर सकता है।

लघु आकार के परमाणु बम शत्रु के किसी विशेष ठिकाने को ध्वस्त करने के लिए पर्याप्त समझे जाते हैं। लघु आकार के परमाणु बम बनाने के लिए आंकड़े भी कम क्षमता वाले परमाणु परीक्षणों से प्राप्त किये जा सकते हैं। इसी नाते भारत ने 'लो ईल्ड डिवाइस' प्रयुक्त की अर्थात् सब किलोटन क्षमता (एक किलोटन से कम) के परीक्षण संपन्न किये। यह भारत की वैज्ञानिक मेधा का चरमोत्कर्ष है जिस पर सभी भारतीयों को गर्व है।

sdprasad24oct@yahoo.com

अलविदा अलन बीन





कालीशंकर



इसरो के वरिष्ठ वैज्ञानिक विगत लगभग चालीस वर्षों से अंतरिक्ष विज्ञान और अंतरिक्ष अन्वेषण पर लेखन करते रहे हैं। तीन सौ से अधिक लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपे तथा 25 पुस्तकें प्रकाशित हुईं हैं। आपको कई राष्ट्रीय सम्मानों से सम्मानित किया गया है। कालीशंकर लखनऊ में निवास करते हैं।

15 मार्च 1932 को अमरीका के टेक्सास के हीलर कस्बे में जन्मे अलन लैवर्न बीन एक अमरीकी नेवल पदाधिकारी, नेवल एवियेटर, वैमानिकी इंजीनियर, टेस्ट पायलट, नासा अन्तरिक्ष यात्री तथा चन्द्र सतह पर गमन करने वाले चौथे अन्तरिक्ष यात्री थे। अन्तरिक्ष यात्री ग्रुप के अन्तर्गत उनका चयन 1963 में अन्तरिक्ष यात्री बनने के लिए किया गया। अंतरिक्ष में उनकी प्रथम उड़ान अपोलो-12 मिशन के मिशन के द्वारा नवम्बर 1969 में 37 वर्ष की उम्र में हुई जो कि चन्द्र सतह पर लैन्ड करने वाला दूसरा मानवयुक्त मिशन था। उनकी दूसरी और अन्तिम अन्तरिक्ष उड़ान 1973 में स्काई लैब-3 मिशन के लिए हुई जो स्काई लैब अन्तरिक्ष स्टेशन के लिए तीसरा मानवयुक्त मिशन था। 1975 में अमरीकी नेवी से तथा 1981 में नासा से रिटायर होने के बाद उनकी दिलचस्पी पेन्टिग में बढ़ी तथा उन्होंने अन्तरिक्ष से सम्बन्धित अनेक दृथ्यों को तथा अपने अनुभवों को तथा अपने सहयोगी अपोलो कार्यक्रम के अन्तरिक्ष यात्रियों को अपनी पेन्टिग का स्वरूप दिया। 26 मई, 2018 को 86 वर्ष की उम्र में इस महान नासा अन्तरिक्ष यात्री की टेक्सास के हयूस्टन में मृत्यु हो गई। अपोलो-12 मिशन के जीवित अन्तरिक्ष यात्रियों में वे अकेले बचे अन्तरिक्ष यात्री थे। प्रस्तुत लेख में इस महान अन्तरिक्ष यात्री अलन बीन के जीवन की उपलब्धियों का वर्णन किया गया है।

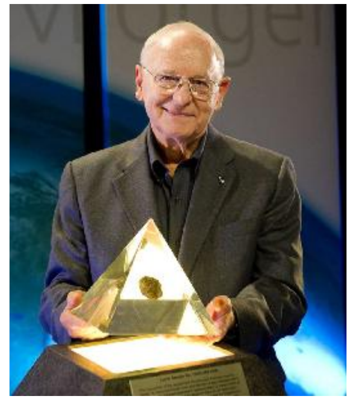
प्रारंभिक जीवन और शिक्षा

अलन बीन का जन्म 15 मार्च 1932 को उत्तर-पूर्वी टेक्सास पैनहैन्डल के हीलर काउन्टी की सीट हीलर में हुआ लेकिन वे फोर्ट वर्थ को ही अपना घर मानते हैं। वे स्काटिश जाति के थे। एक बच्चे के रूप में वे मिन्डेन में रहे जो उत्तर पूर्वी ल्युसीनिया वेबस्टर पैरिश में पड़ता है जहाँ उनके पिता अमरीकी मृदा संरक्षण सेवा में काम करते थे। बीन एक स्काउट भी रहे तथा इसमें उन्हे प्रथम क्षेणी का रैंक प्राप्त हुआ। उन्होंने 1950 में आर एल पश्चल हाई स्कूल से, जो टेक्सास के फोर्ट वर्थ स्थान पर स्थित है, ग्रेजुएशन प्राप्त किया। 1955 में बीन ने आस्टिन स्थित टेक्सास विश्वविद्यालय से वैज्ञानिकी अभियांत्रिकी में बैचेलर आफ साइंस की डिग्री प्राप्त की।

मिलिटरी सेवा

अलन बीन को अमरीकी सेना में कमीशन आस्टिन में नेवल रिजर्व आफिसर्स प्रशिक्षण कार्प्स के माध्यम से प्राप्त हुआ तथा उसके बाद उन्होंने उड़ान प्रशिक्षण में भाग लिया। उड़ान प्रशिक्षण पूरा करने के बाद उनकी नियुक्ति आक्रमण स्वाड्रन में 44 में

फ्लोरिडा के नेवल वायु सेना स्टेशन जैकसोनविले में हुई (1956 से 1960 के बीच)। 4 वर्ष के प्रशिक्षण के बाद उन्होंने मैरीलैन्ड स्थित अमरीकी नेवी टेस्ट पायलट स्कूल में प्रशिक्षण लिया जहाँ पर उनके प्रशिक्षक अपोलो-12 मिशन के भावी कमान्डर पीटर कोनरैड थे। उसके बाद उन्होंने टेस्ट पायलट के रूप में अनेक नौ सेना के वायुयानों को उड़ाया। अमरीकी नौ सेना टेस्ट पायलट स्कूल के बाद उनकी नियुक्ति 1962 से 1963 के दौरान नौ सेना आक्रमण स्वाड्रन में हुई तथा इसी दौरान उनका चयन नासा अन्तरिक्ष अन्तरिक्ष यात्री के तौर पर हुआ। अपने मिलिटरी कैरियर के दौरान अलन बीन ने कुल 7145 घन्टे वायुयान उड़ाये जिसमें 4890 घंटे जेट वायुयानों के उड़ान का समय शामिल था।



नासा कॅरियर

बीन का चयन 1963 में नासा के द्वारा 'अन्तरिक्ष यात्री ग्रुप-3' के अन्तर्गत किया गया। पिछले वर्ष 'अन्तरक्षित यात्री ग्रुप-2' में उनका चयन नहीं हो पाया था। उनका चयन जेमिनी-10 मिशन में बैकअप कमान्डर माड्यूल पायलट के रूप में हुआ लेकिन प्रारंभिक अपोलो उड़ानों में चयनित होने में असफल रहे। उसके बाद उन्हें अपोलो उपयोग कार्यक्रम में अल्पकालीन नियुक्ति मिली। उस पद पर वे प्रथम अन्तरिक्ष यात्री बने जिन्होंने तटस्थ अप्लावकता सिमुलेटर (न्यूट्रल बायोन्सी सिमुलेटर) में डुबकी लगाई तथा अन्तरिक्ष यात्री प्रशिक्षण में चैम्पियन बने। जब उनके एक सहयोगी अन्तरिक्ष यात्री क्लिफ्टन विलियम्स की एक वायु दुर्घटना में मृत्यु हो गई तो बीन के लिए अपोलो-9 मिशन में एक बैकअप अन्तरिक्ष यात्री की जगह खाली हो गई। अपोलो-12 के कमान्डर कोनरैड, जिन्होंने इसके पहले बीन को नौ सेना उड़ान टेस्ट स्कूल में प्रशिक्षण दिया था, ने व्यक्तिगत रूप से अलन बीन को विलियम्स को रिप्लेस करने की प्रार्थना की। अलन बीन दो बार अन्तरिक्ष यात्राएँ कर चुके हैं तथा उनकी अन्तरिक्ष यात्राओं का विवरण सारणी-1 में दिया गया है।

सारणी-1

अलन बीन की अन्तरिक्ष यात्राएँ

क्र.	मिशन	मिशन	मिशन अवधि	अन्तरिक्ष प्रवास
1.	अपोलो-12	चन्द्र माड्यूल पायलट	14 से 24 नवम्बर, 1969	10 दि.4 घं. 36 मि.
2.	स्काईलैब-3	कमान्डर	28 जुलाई से 25 सितम्बर 1973	59 दिन 11 घं. 9 मि.
			कुल प्रवास 69 दि.	15 घं. 45 मि.

अपोलो-12 मिशन में बीन चन्द्र माड्यूल पायलट थे तथा यह द्वितीय चन्द्र लैन्डिग थी। बीन और पीटे कोनरैड ने नवम्बर, 1969 में पृथ्वी से 250,000 मील की यात्रा करके चन्द्रमा की सतह के एक स्थल 'ओसेन ऑफ स्टार्म्स' में लैन्ड किया। इस मिशन की पृथ्वी से जब उड़ान हुई तो उस समय भयानक तड़ित बिजली चमक रही थी। अलन बनी ने ऐसे समय में मिशन को तड़ित बिजली से बचाने के लिए दूरमिति को रीस्टोर किया तथा उड़ान नियंत्रक जॉन ऑरन के निर्देशों का पालन किया।

अलन बीन का अपोलो-12 मिशन

अपोलो-12 मिशन में बीन चन्द्र माड्यूल पायलट थे तथा यह द्वितीय चन्द्र लैन्डिग थी। बीन और पीटे कोनरैड ने नवम्बर, 1969 में पृथ्वी से 250,000 मील की यात्रा करके चन्द्रमा की सतह के एक स्थल 'ओसेन ऑफ स्टार्म्स' में लैन्ड किया। इस मिशन की पृथ्वी से जब उड़ान हुई तो उस समय भयानक तड़ित बिजली चमक रही थी। अलन बनी ने ऐसे समय में मिशन को तड़ित बिजली से बचाने के लिए दूरमिति को रीस्टोर किया तथा उड़ान नियंत्रक जॉन ऑरन के निर्देशों का पालन किया। अपोलो-12 अन्तरिक्ष यान 36 सेकन्ड तक तड़ित बिजली के द्वारा प्रभावित रहा। इस मिशन में पीटे कोनरैड (कमान्डर) तथा अलन बीन (चन्द्र माड्यूल पायलट) चन्द्र सतह पर उतरे तथा चन्द्र सतह परीक्षणों के उपकरणों का चन्द्र कक्षा पर प्रस्तरण किया। इन दोनों अन्तरिक्ष यात्रियों ने पावर स्त्रोत के रूप में प्रथम न्यूक्लियर पावर जनन स्टेशन चन्द्र सतह पर स्थापित किया। इस मिशन में डिक गार्डन चन्द्र कक्षा पर रहे तथा वहाँ से वे भावी चन्द्र सतह की लैन्डिग साइटों के चित्र खींचते रहे। अपोलो 12 मिशन का प्रमोचन 14 नवम्बर, 1969 को हुआ तथा यह 24 नवम्बर 1969 को वापस पृथ्वी पर आया। अपोलो-12 मिशन चन्द्र सतह पर 19 नवम्बर, 1969 को उतरा।



स्काईलैब-3 के द्वारा अलन बीन की अंतरिक्ष यात्रा

29 जुलाई से 25 सितम्बर 1973 के बीच सम्पन्न स्काईलैब परियोजना के द्वितीय स्काईलैब-3 मिशन के अलन बीन अन्तरिक्ष यान कमान्डर थे। इस 59 दिवसीय, 244 लाख मील लम्बी यात्रा के विश्व रिकार्ड बनाने वाले मिशन में उनके साथ थे वैज्ञानिक अन्तरिक्ष यात्री ओवेन गैरियट और मैरीन कार्प्स के कर्नल जैक आर लूसमा। इस मिशन में बीन ने मानव प्रसाधन इकाई (मैन्ड मनूवर इकाई) के प्रोटोमाडल की जाँच की तथा स्काईलैब अन्तरिक्ष यान के बाहर एक स्पेस वॉक की। स्काईलैब-3 मिशन के अंतरिक्ष यात्रियों ने 15% मिशन लक्ष्यों को पूरा किया। स्काईलैब-3 अमरीकी अन्तरिक्ष स्टेशन स्काईलैब के लिए दूसरा मानवयुक्त मिशन था।

नासा कैरियर के बाद के कार्य

अपने अगले अभियान में बीन संयुक्त अमरीकी-रूसी अपोलो सोयुज टेस्ट प्रोजेक्ट (ए.एस.टी.पी) में बैकअप अन्तरिक्ष यान कमान्डर थे। अक्टूबर 1975 में बीन अमरीकी सेना से कैप्टेन के पद से रिटायर हो गये तथा सिविलियन क्षमता में अन्तरिक्ष यात्री कार्यालय के अन्दर अन्तरिक्ष यात्री उम्मीदवार प्रचालन और प्रशिक्षण ग्रुप के हेड के रूप में काम करते रहे। बीन ने अपने अन्तरिक्ष कैरियर में 1671 घं. 45 मि. अन्तरिक्ष में गुजारे जिनमें उनके द्वारा चन्द्र सतह और पृथ्वी की निम्न कक्षा में की गई स्पेस वाकें भी शामिल हैं।

बीन को प्राप्त विभिन्न सम्मान

- वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति के लिए रियर एडमिरल विलियम एस पार्सन्स अवार्ड।
- गॉडफ्रे एल कैबट अवार्ड (1970)।
- नेशनल अकेडेमी ऑफ टेलीविज़न आर्ट्स एन्ड साइंसेस ट्रस्टीज अवार्ड।
- टेक्सास के प्रेस असोसियेशन की ओर से मैन ऑफ दी इयर अवार्ड (1969)।
- सिटी ऑफ शिकागो गोल्ड मेडल।
- वैमानिक अन्तर्राष्ट्रीय फेडरेशन का यूरी गगारिन गोल्ड मेडल (1973)
- वी.एम. कोमारोव डिप्लोमा (1973)
- अमरीकी वैमानिकी सोसायटी का फ्लाइट अचीवमेन्ट अवार्ड (1974)

बीन ने नेवी अन्तरिक्ष यात्री विंग का नेवी अतिविशिष्ट सेवा मेडल तथा नासा का अतिविशिष्ट सेवा मेडल दो बार प्राप्त किया। बीन को 1983 में अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष हाल ऑफ फेम, 1997 में अमरीकी अन्तरिक्ष यात्री हाल ऑफ फेम, 2010 में राष्ट्रीय वैमानिकी हाल ऑफ फेम में शामिल किया गया। वे अमरीकी अन्तरिक्षयानिकी संस्था के फेलो थे तथा प्रायोगिक टेस्ट पायलट संस्था के सदस्य थे। बीन ने 1970 में टेक्सास विश्वविद्यालय का डिस्टिंग्विश्ड अल्युमिनस अवार्ड तथा डिस्टिंग्विश्ड इंजीनियरिंग ग्रेजुएट अवार्ड प्राप्त किया। वर्ष 1973 की राबर्ट जे.कालियर ट्रॉफी नासा और स्काईलैब मिशन के अन्तरिक्ष यात्रियों को प्रदान की गई। बीन को 1972 में टेक्सास वेसलेन कॉलेज की ओर से आनरेरी डाक्टर ऑफ साइंस की डिग्री तथा 1974 में ओहायो के एक्रन विश्वविद्यालय की ओर से डाक्टर ऑफ इंजीनियरिंग साइंस डिग्री विद्यालय की ओर से डाक्टर ऑफ इंजीनियरिंग साइंस डिग्री प्रदान की गई। वर्ष 1975 में अमरीकी राष्ट्रपति फोर्ड ने स्काईलैब कमान्डर गेराल्ड कार को डॉ. राबर्ट एच गोडार्ड मेमोरियल ट्राफी ह्वावट हाउस में स्काईलैब अन्तरिक्ष यात्रियों की ओर से (जिसमें बीन भी शामिल थे) प्रदान की। बीन ने अपने स्काईलैब-3 मिशन के सहयोगी अंतरिक्ष यात्रियों के साथ 'ए आई ए ए' संस्था का 'आक्टेव चैन्यूने अवार्ड' भी प्राप्त किया।

बीन का पेन्टिंग का ओर झुकाव

पेन्टिंग में अपना शौक पूरा करने के लिए बीन ने 1981 में नासा से सेवानिवृत्ति ले ली। उनका यह निर्णय इस बात पर आधारित था कि अपने 18 वर्षीय अन्तरिक्ष यात्री कैरियर के दौरान वे इस बात के लिए सौभाग्यशाली थे कि उन्होने ऐसी ऐसी दुनियाएँ और दृश्यों को देखा है जिसे किसी भी भूतकालीन और वर्तमान आर्टिस्ट की आँख ने नहीं देखा है और बीन को ऐसी आशा है कि वे अपनी पेन्टिंग आर्ट के माध्यम से अपने अनुभवों को प्रकट कर सकेंगे।

पेन्टर के रूप में बीन चन्द्रमा पर रंग जोड़ना चाहते थे। उनकी पेन्टिंग में चन्द्र परिदृश्य नीरस भूरा रंग नहीं है बल्कि ये विभिन्न शेड के रंग हैं। उन्होंने आगे कहा, ''यदि मैं चन्द्रमा को रंगने वाला एक वैज्ञानिक होता तो मैं इसे भूरे रंग से रंगता। चूँकि अब मैं आर्टिस्ट हूँ

इसलिए मैं इसमें और रंग जोड़ सकता हूँ। बीन की पेन्टिग में शामिल हैं 'ओसन आफ स्टार्म्स' स्थल के 'ल्युनर ग्रैन्ड प्रिक्स' और 'रॉक एंड रोल' तथा अपनी पेन्टिंग में उन्होंने वास्तविक चन्द्र मिट्टी का प्रयोग किया। जब उन्होंने पेन्टिंग प्रारम्भ किया तो उन्होंने महसूस किया कि उनके स्पेस सूट के पैच चन्द्र मिट्टी के कारण गन्दे हो गये थे। उन्होंने अपनी पेन्टिंग में उन पैचों के लघु टुकड़ों का प्रयोग किया जिन्होंने बीन की पेन्टिंग को विशिष्ट बनाया। उन्होंने एक हथौड़ा भी इस्तेमाल किया जो चन्द्रमा की सतह में फ्लैग पोल को पाउन्ड करने के लिए इस्तेमाल किया जाता था तथा एक कांस्य चाँद का इस्तेमाल पेन्टिंग को निखारने के लिए किया। अपोलो-11 की चन्द्र लैन्डिग की 40वीं वर्षगाँठ के अवसर पर जलाई 2009 में अलन बीन में अपनी चन्द्र पेन्टिंग की प्रदर्शनी वाशिंग्टन के 'स्मथसोनियन संस्थान' के राष्ट्रीय वायु और अन्तरिक्ष म्यूजियम में लगाई।



बीन की मृत्यु

चन्द्र सतह पर गमन करने वाले अलन बीन चौथे व्यक्ति थे। 86 वर्ष की उम्र में 26 मई, 2018 को इस महान अन्तरिक्ष यात्री की मृत्यु हो गई। मृत्यु के दो सप्ताह पहले वे अचानक बीमार हुए थे तथा उस समय वे इन्डियाना प्रान्त के फोर्ट वेयने में थे। उनकी मृत्यु के समय उनके साथ उनकी दूसरी पत्नी लेसली थीं। उनकी पहली शादी से एक बेटा क्ले तथा एक बेटी एमी सू हैं।

पेन्टर के रूप में बीन चन्द्रमा पर रंग जोड़ना चाहते थे तथा इस सन्दर्भ में उन्होंने कहा था, ''हमें एक तरीका निकालना था जिससे हम चन्द्रमा पर बिना इसे रंग करके हम रंग चढ़ा सकें।'' उनकी पेन्टिंग में चन्द्र परिदृश्य नीरस भूरा रंग नहीं है बल्कि ये विभिन्न शेड के रंग हैं। उन्होंने आगे कहा, ''यदि मैं चन्द्रमा को रंगने वाला एक वैज्ञानिक होता तो मैं इसे भूरे रंग से रंगता। चूँकि अब मैं आर्टिस्ट हूँ इसलिए मैं इसमें और रंग जोड़ सकता हूँ। बीन की पेन्टिग में शामिल हैं 'ओसन आफ स्टार्म्स' स्थल के 'ल्युनर ग्रैन्ड प्रिक्स' और 'रॉक एंड रोल' तथा अपनी पेन्टिंग में उन्होंने वास्तविक चन्द्र मिट्टी का प्रयोग किया।

बीन के द्वारा लिखी गईं पुस्तकें

- माई लाइफ ऐज़ ऐन आस्ट्रोनट (एक अंतरिक्ष यात्री के रूप में मेरा जीवन)
- अपोलोः ऐन आई विटनेस अकाउन्ट (सहलेखक एन्ड्रयू चेकिन)
- इन्टू दी सनलिट स्प्लेन्डर, दी एवियेशन आर्ट ऑफ विलियम एस फिलिप्स
- मिशन कन्ट्रोल अपोलोः दी स्टोरी आफ दी फर्स्ट वायज़ेज टु मून
- पेन्टिंग अपोलोः फर्स्ट आर्टिस्ट आन ऐनदर वर्ल्ड

बीन ने स्काईलैब मिशन के दौरान एक डायरी भी लिखी थी जिस पर एक किताब छपी थी।

अलन बीन के जीवन के कुछ दिलचस्प पहलू

- विश्व के 12 अपोलो अन्तरिक्ष यात्रियों में जो चन्द्र सतह पर गमन कर चुके हैं उनमें से वे एक मात्र अकेले अन्तरिक्ष यात्री हैं जो अन्तरिक्ष यात्री होने के साथ साथ एक पेन्टर भी बने तथा अपने अन्तरिक्ष अनुभव को उन्होने पेन्टिंग के माध्यम से प्रकट किया।
- अलन बीन अपने साथ एक कैमरा टाइमर ले गये थे जिसके द्वारा वे वहाँ से पहले से ही मौजूद सर्वेयर-3 अन्तरिक्ष यान के सामने खड़े होकर एक साथ अपना और कमान्डर पीटर कोनरैड का फोटो लेना चाहते थे। लेकिन समयाभाव के कारण यह सम्भव नहीं हो पाया।

अलन बीन का नासा के द्वारा लिया गया एक साक्षात्कार

नासा के एक अधिकारी जिम प्लैक्सको (जे.पी.) ने अन्तरिक्ष यात्री अलन बीन का साक्षात्कार लिया। उस साक्षात्कार के कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं। यह साक्षात्कार 3 अक्टूबर, 1992 को लिया गया था।

जे पी : अनुमानतः आपने कितनी पेन्टिंग बनाई हैं?

अलन बीन : लगभग 70

जी पी: कितने समय के अन्तराल में?

अलन बीन : हम लगभग 9 वर्ष के अन्तरिक्ष चित्रों की बात कर रहे हैं।

जी पी : आपके द्वारा बनाये गये सभी चित्र आपके चन्द्रमा पर आधारित आपके अनुभव से सम्बन्धित हैं। क्या आपने ऐसे भी कुछ चित्र बनाये हैं जो आपके स्काईलैब मिशन से सम्बन्धित रहे हैं?

अलन बीन : नहीं, मैंने स्काईलैब मिशन से सम्बन्धित कुछ चित्रों को बनाने की योजना बनाई है। वास्तव में मैंने इसकी योजना उस समय बनाई थी जब मैंने 1981 में नासा छोड़ा था तथा अपने किये गये अभियानों को रिकार्ड करने के विषय में सोचा था तथा इनमें स्काई लैब और अपोलो प्रमुख थे। लेकिन मैंने पाया कि एक आर्टिस्ट होने के साथ परिशुद्ध कार्य करना काफी मुश्किल काम थ। विभिन्न प्रकार के स्पेस सूटों, हार्डवेयर और अन्य चीजों के बीच दौड़ लगाना तथा उन्हें परिशुद्ध और सुन्दर बनाना काफी मुश्किल काम था। इसलिए मैं अपने प्रयासों को विगत समय के अपोलो अभियानों पर केन्द्रित कर रहा हूँ।



विश्व के 12 अपोलो अन्तरिक्ष यात्रियों में जो चन्द्र सतह पर गमन कर चुके हैं उनमें से वे एक मात्र अकेले अन्तरिक्ष यात्री हैं जो अन्तरिक्ष यात्री होने के साथ साथ एक पेन्टर भी बने तथा अपने अन्तरिक्ष अनुभव को उन्होंने पेन्टिंग के माध्यम से प्रकट किया।

जे पी : क्या आपके अन्तरिक्ष यात्री प्रशिक्षण का कोई विशेष पहलू है जिसे आप अपनी कलात्मक क्षमताओं में सबसे अधिक प्राथमिकता देते हैं?

अलन बीन : यह बड़ा अच्छा प्रश्न है। जब आप कोई अन्तरिक्षयान उड़ा रहे होते हैं तो यह ड्राइंग और पेन्टिंग के काम से सर्वथा भिन्न होता है क्योंकि आप उन्हें उड़ा रहे होते हैं तो आप की दिलचस्पी इस बात पर होती है कि वे कैसे काम कर रहे हैं। उदाहरणार्थ चन्द्र माड्यूल के ऊपर लगे रेडार एन्टेना की बात लीजिए। मुझे जानना जरूरी था कि मैं किस तरफ उन्मुख करूँ, क्या होगा यदि मोटर फेल हो जाती है, मुझे वैकल्पिक मोटर कैसे प्राप्त होगी, क्या होगा यदि सरकिट ब्रेकर रूक जाता है इत्यादि।

जे पी : मैंने अनेक पुस्तकें देखी हैं जहाँ पर आपकी पेन्टिंग का प्रयोग पुस्तक को वर्णित करने के लिए किया गया है तथा मैंने पुस्तकों में आपकी पेन्टिंग को देखा है जो अन्तरिक्ष आर्ट का संग्रह था। कोई एक पुस्तक को तैयार करने की आपकी क्या योजना है जिसमें केवल आपका ही आर्ट वर्क हो?

अलन बीन : इस सन्दर्भ में इसे ट्राई करने की मेरी एक विलक्षण योजना है जिसमें अपोलो -12 की व 25 वीं वर्षगाँठ में आजमाऊँगा जो 1994 में आयेगी। मैंने सोचा कि यह बहुत आश्चर्यजनक अवसर होगा।

जे पी : जब आप अपोलो-12 मिशन से वापस आये तो क्या आपने इस बात की कल्पना की थी कि अपोलो अन्तरिक्ष कार्यक्रम वैसे ही सम्पन्न होगा जैसा घटित हुआ- अर्थात् अपोलो-17 के साथ तथा उसके बाद चन्द्रमा के लिए कोई मिशन नहीं हुए।

अलन बीन : नहीं, ऐसा नही सोचा था। वास्तव में जब हम वापस आये तो सोचा था कि 20 उड़ानें होंगी। इन्हे कम करके पहले से ही 20 कर दिया गया था तथा मैंने सोचा था कि मुझे चन्द्रमा पर पुनः वापस जाने का मौका मिलेगा- हो सकता है अपोलो-20 या 19 या इससे मिलता जुलता अन्य कुछ। इन्ही चीजों के बीच से मुझे स्काईलैब मिशन में मौका मिला।

जे पी : वर्तमान के आज में हमारे कल्चर और पर्यावरण के सन्दर्भ में अन्तरिक्ष स्टेशन के सफल कार्यान्वयन तथा राष्ट्रपति बुश के मिशन 'फराम प्लैनेट अर्थ' के विषय में आपके क्या विचार हैं। क्या आप मानते हैं कि ये समीप भविष्य की वास्तविकताएँ हैं?

अलन बीन : हाँ, मेरा तो ऐसा ही विचार है। मैं समझता हूँ कि सब कुछ धन की उपलब्धता पर निर्भर करता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि प्रशासन इस प्रकार के अन्वेषण कार्य करने के लिए कितना धन खर्च करना चाहता है। मैं समझता हूँ कि जो धन अभी हमें मिल रहा है वह भविष्य में भी उपलब्ध होगा तथा उससे हम एक अन्तरिक्ष स्टेशन बनायेंगे। मैं नहीं सोचता हूँ कि बजट में अचानक वृद्धि की जायेगी।

जे पी : क्या आप वार्ता समाप्ति पर कोई टिप्पणी देना चाहेंगे या हमारे पाठकों के लिए आपके पास कोई सन्देश है?

अलन बीन : इसके अलावा अन्य कुछ नहीं कि मानव का पृथ्वी ग्रह से ब्रम्हान्ड मेंस्थानान्तर होगा। पहले चन्द्रमा पर फिर मंगल ग्रह पर और उसके बाद किसे पता कि अन्य किस जगह पर। यह मात्र एक प्रारंभ है तथा कोई भी इसे नहीं रोक सकता है। भविष्य में पृथ्वी की तुलना में पृथ्वी से बाहर मानवों की संख्या अधिक होगी। ऐसा ही होने जा रहा है तथा हमें इसके विषय में चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।

जे पी : साक्षात्कार के लिए धन्यवाद।

ksshukla@hotmail.com

मीठा इतना खास क्यों ?



डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र



डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से रसायन विज्ञान में पीएच-डी. की उपाधि प्राप्त की। आप टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान मुंबई के होमी भाभा विज्ञान केन्द्र में रीडर हैं। लोकप्रिय विज्ञान लेखक के रूप में आपकी अपार ख्याति है जोकि हिन्दी में आपके व्यापक लेखन से निर्मित हुई है। आपके 250 से अधिक लेख तथा 22 पुस्तकें प्रकाशित हैं। राजभाषा गौरव पुरस्कार, होमी जहाँगीर भाभा स्वर्ण पुरस्कार, शताब्दी सम्मान, राजभाषा भूषण सम्मान, इस्वा सम्मान सहित अनेक पुरस्कारों से सम्मानित डॉ. मिश्र मुंबई में निवास करते हैं।

मिठाइयाँ, चाहे जिस भी रंग या आकारों, या नामों की हों, वे जिस किसी भी तरह की पैकिंग में हों- उन्हें देखकर खाने को मन ललचा ही जाता है, चाहे वह चॉकलेट हो या फिर जलेबी। बहुतों को तो यह जानते हुए भी कि ज्यादा मीठा खाना ठीक नहीं होता, लोभ का संवरण कर पाना मुश्किल हो जाता है। दरअसल मीठे स्वाद की चाह ही कुछ ऐसी है जो हमें मिठाइयाँ खाने से रोक नहीं पाती। बच्चे तो खैर मिठाइयों के दीवाने होते हैं। आखिर इस मीठे स्वाद में ऐसा क्या ख़ास है? वैज्ञानिक शोध से इस बात का खुलासा हुआ है कि मनुष्य में मीठे की चाह सहज मौजूद होती है। यह मीठा हमारे जीवित रहने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

बच्चों की तो छोड़िए, वॉशिंगटन विश्वविद्यालय के हाल के अनुसंधान से पता चला है कि नवजात शिशु भी अन्य स्वादों की तुलना में मीठे को ज्यादा पसंद करते हैं। कई वैज्ञानिकों का मानना है कि मीठे के प्रति बच्चों की प्राथमिकता वास्तव में विकासमूलक है। यानी इसका संबंध दीर्घकालिक मानव विकास से जुड़ा है। कहा जाता है कि बीते वक्त में जो बच्चे उच्च-कैलोरी वाला ख़ाना पसंद करते थे उनके भोजन के संकटकाल में बचने की संभावना यानी उत्तरजीविता ज़्यादा थी। लेकिन मौजूदा समय में दिक्कत यह है कि परिष्कृत शर्करा सरलता से बहुतायत में उपलब्ध है और उससे बच्चों में मोटापे की समस्या बढ़ रही है। ऐसे में अब स्वास्थ्य विशेषज्ञ सलाह देने लगे हैं कि अभिभावक बच्चों को खाने पीने की ज्यादा मीठी चीज़ें देने से बचें।

शर्करा है, तो जीवन है

शर्करा से आशय मीठे कार्बोहाइड्रेट से है। प्रायः यह सुक्रोस होती है, जिसे हम चीनी के नाम से जानते हैं। रासायनिक भाषा में इसे डाईसैकेराइड कहा जाता है। खानपान में यही शर्करा हम ग्रहण करते हैं। यह जल से अभिक्रिया करके दो सरल अणुओं- ग्लूकोस तथा फ्रक्टोज़ में सरलता से वियोजित हो जाती है। इन्हें हम मोनोसैकराइड के नाम से जानते हैं। जब हम खाना खाते हैं तो सामान्य शर्करा यानी ग्लूकोस, आंतों द्वारा सोख कर रक्त में पहुँचा दी जाती है जो समान रूप से शरीर की सारी कोशिकाओं में बांट दी जाती है। हमारे मस्तिष्क के लिए ग्लूकोस बहुत अहम है क्योंकि दिमाग में मौजूद करीब एक खरब स्नायु कोशिकाओं (न्यूरॉन्स) के लिए यही एकमेव ऊर्जा का स्रोत है। चूँकि न्यूरॉन्स के पास ग्लूकोस के भंडारण की क्षमता नहीं होती इसलिए इन्हें रुधिर के जरिये लगातार इसकी

आपूर्ति की ज़रूरत होती है। यही कारण है कि मधुमेह के मरीजों में रक्त शर्करा (ब्लड शुगर) कम हो जाने पर उनके अचेतावस्था (कोमा) में जाने की आशंका अधिक रहती है।

मीठा स्वाद बड़ा ही रुचिकर होता है। यह कुल चार बुनियादी स्वादों में से एक होता है। अन्य तीन स्वाद हैं; नमकीन, खट्टा तथा कड़वा। मीठे खानपान को प्रायः लोग पसंद करते हैं। यह मीठा स्वाद कुछ खास रसायनों की वजह से होता है। कुदरती चीजों में ये रसायन स्वतः पैदा होते हैं। उन्हें निर्मित नहीं करना पड़ता। लेकिन वे चीजें जो मनुष्य बनाता है, उनमें मिठास लाने के लिए कुछ विशेष तरह के यौगिक मिलाये जाते हैं। खानपान की चीजों में रासायनिक यौगिक पहले से ही मिलाए जाते रहे हैं। मिठाइयों तथा बेकरी के उत्पादों में अनेक रसायनों को मिलाने की अनुमति है। ये रसायन स्वास्थ्य के लिए प्रायः नुकसानदेह नहीं होते हैं। पूरी दुनिया में ये रासायनिक यौगिक आहार में मिलाए जाते हैं। इन्हें आहार योज्य या फूड ऐडिटिव्स कहा जाता है। ये कई तरह के होते हैं तथा गुणधर्म के आधार पर इन्हें कई श्रेणियों में बाँटा जाता है।



सभी किस्म की शर्करा को शरीर ग्लूकोस और फ्रक्टोज़ में बदल देता है और यकृत में इन्हें परिवर्तित कर दिया जाता है। शर्करा को चर्बी या ग्लाइकोजन में बदल दिया जाता है या फिर ग्लूकोस में बदलकर कोशिकाओं के लिए रक्त में शामिल कर दिया जाता है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा के अनुसार आपके एक दिन में खाने-पीने से मिलने वाली ऊर्जा के बाद अतिरिक्त शर्करा 10% से ज़्यादा नहीं होनी चाहिए। चाहे ये शहद से मिले, फलों के जूस या जैम से, या फिर प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ या टेबल शुगर से।



ज़्यादा मीठा भी ज़हर बन सकता है

शर्करा दरअसल मिजाज़ को खुशनुमा बना सकती है। वैज्ञानिकों का कहना है कि यह शरीर में सेरोटोनिन नामक 'प्रसन्नता का हार्मोन' निर्मुक्त करने के लिए प्रेरित करती है। शर्करा से जो हमें तात्कालिक उत्साह जैसा भाव मिलता है, वह भी एक वजह है कि उत्सव या जलसे के अवसर पर हम मीठा खाने को तत्पर होते हैं। लेकिन ज़्यादा मात्रा में खाए गए मीठे को संतुलित करने के लिए शरीर को ज़्यादा इंसुलिन भी छोड़ना पड़ता है। ये प्रक्रिया 'शुगर-क्रैश' ज़्यादा मीठा खाने से होने वाली थकान की ओर धकेलती है जिससे और ज़्यादा मीठा खाने का मन करता है। ये अत्यधिक भोजन का एक चक्र बना सकती है। यही नहीं, हमारे शरीर को ये भी पता नहीं चलता कि क्या हमने ख़ास किस्म की शर्करा काफ़ी मात्रा में ले ली है। शोधकर्ताओं के अनुसार गैरशर्करा वाले यौगिकों से बनाए गए मीठे खाद्य पदार्थ और पेय उस तरह तृप्ति का भाव पैदा नहीं करते जैसे कि शर्करा वाले यौगिक करते हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि इंसान प्राकृतिक रूप से शर्करा के प्रति आकृष्ट होता है।

छुपा हुआ है ख़तरा

ज़्यादातर प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों में मीठे के लिए सुक्रोज़ का इस्तेमाल किया जाता है जिसमें 50% फ्रक्टोज़ होता है। शरीर प्राकृतिक रूप से फलों, शहद, दूध में पाए जाने वाली शर्करा और गन्ने या चुकंदर से निकाली गई प्रसंस्कृत शर्करा में फ़र्क नहीं कर पाता है। सभी किस्म की शर्करा को शरीर ग्लूकोस और फ्रक्टोज़ में बदल देता है और यकृत में इन्हें परिवर्तित कर दिया जाता है। शर्करा को चर्बी या ग्लाइकोजन में बदल दिया जाता है या फिर ग्लूकोस में बदलकर कोशिकाओं के लिए रक्त में शामिल कर दिया जाता है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा के अनुसार आपके एक दिन में खाने-पीने से मिलने वाली ऊर्जा के बाद अतिरिक्त शर्करा 10% से ज़्यादा नहीं होनी चाहिए। चाहे ये शहद से मिले, फलों के जूस या जैम से, या फिर प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ या टेबल शुगर से। इसका मतलब यह हुआ कि अपने खानपान में आदमी को हर रोज 70 ग्राम और महिला को हर रोज 50 ग्राम शर्करा लेनी चाहिए। हालांकि ये मात्रा व्यक्ति के आकार, उम्र और गतिशीलता पर निर्भर करेगी।

शर्करा का विकल्प क्या हैं?

हमारे खानपान में मीठे रसायनों की अहम् भूमिका है। लेकिन मधुमेह जैसी बीमारी में शर्करा से परहेज करने की सलाह दी जाती है। ऐसा इसलिए क्योंकि शरीर में इंसुलिन का समुचित स्राव न होने से रक्त शर्करा (ग्लूकोस) का ग्लाइकोजन में रूपान्तरण नहीं हो

पाता जिससे कि वह यकृत में संचित रह सके। इस हालत में मधुमेहग्रस्त व्यक्ति के लिए कृत्रिम मधुरक की सलाह दी जाती है। ये रसायन स्वाद में मीठे होते हैं लेकिन शरीर के उपापचय (मेटाबोलिज्म) पर उनका दुष्प्रभाव नहीं पड़ता। इससे स्वाद के चाहत की पूर्ति भी हो जाती है तथा वह यौगिक शरीर से आसानी से निर्मुक्त हो जाता है। एक आंकड़े के अनुसार सन् 2000 में भारत में 3.17 करोड़ मधुमेह के मरीज थे जो दुनिया भर में सबसे ज्यादा थी। उस समय चीन में मधुमेह के मरीजों की संख्या 2.08 करोड़ थी। अमेरिका में 1.77 करोड़ मधुमेह के रोगी थे। नवीनतम आंकड़ें बताते हैं कि अप्रैल 2018 में भारत में मधुमेह के रोगियों की संख्या बढ़कर 7.2 करोड़ हो चुकी है। मोटे तौर पर देश में वयस्क आबादी का करीब 10.3 प्रतिशत मधुमेह की बीमारी से ग्रसित है। मधुमेहग्रस्त मरीजों का यह आंकड़ा अगले एक दशक में दुगुना हो जाने वाला है। यह भारत के लिए गंभीर चिंता की बात है। यानी इतनी बड़ी आबादी के लिए शर्करा वर्जित होगी। परोक्ष रूप से हम कह सकते हैं कि आने वाले दिनों में एक बड़ी आबादी बनावटी मिठास (आर्टिफिशियल मधुरक) पर आश्रित होगी। प्रस्तुत लेख में हम उन रसायनों की चर्चा करेंगे जिन्हें स्वीटनर या मधुरक कहा जाता है। मधुरक यानी पदार्थ को मीठा बनाने वाले रासायनिक यौगिक। कुछ मुख्य प्रकार के रसायनों का जिक्र करेंगे जो बहुतायत से खाद्य-पदार्थों में मिलाए जाते हैं तथा जिनके बारे में हमें जानकारी होनी चाहिए।



स्वीटनर (मधुरक)

मधुरक को भोजन की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। सुक्रोस सभी प्रकार के स्वीटनर्स का आधार है। चूँकि सुक्रोस कार्बोहाइड्रेट के रूप में ऊर्जा प्रदान करता है इसलिए इसे 'पोषक मधुरक' की श्रेणी में रखा जाता है। दूसरे पोषक स्वीटनर्स में ग्लूकोस, फ्रक्टोज, कार्न सिरप तथा शुगर ऐल्कोहॉल (सारबिटॉल, मैनिटॉल, जाइलिटॉल) प्रमुख हैं। सैकरीन की खोज के साथ 'गैर-पोषक स्वीटनर्स' का उपयोग प्रारम्भ हुआ। वर्तमान समय में सैकरीन का उपयोग बड़े पैमाने पर हो रहा है। सैकरीन के साथ-साथ ऐस्पार्टेम, नियोटेम, एससल्फेम पोटैशियम आदि प्रमुख गैर-पोषक मधुरक हैं। गैर-पोषक कृत्रिम स्वीटनर्स को स्वास्थ के लिए प्रायः हानिकारक माना जाता है। आजकल प्राकृतिक रूप से मिलने वाले मधुरक का प्रयोग दिन प्रतिदिन धटता जा रहा है। इनके स्थान पर कृत्रिम मधुरक का प्रयोग बड़े स्तर पर किया जा रहा है। लगभग सभी बड़ी कम्पनियाँ पेय पदार्थों में कृत्रिम मधुरक का उपयोग करती हैं। सबसे प्रचलित कृत्रिम मधुरक सैकरीन है, जिसका प्रयोग मिठाईयों, फलों तथा पेय पदार्थों को मीठा करने के लिए किया जाता है। यहाँ हम प्राकृतिक मधुरक शहद के साथ कुछ कृत्रिम स्वीटनर्स का जिक्र करेंगे।

प्राचीन काल से ही शहद को एक जीवाणुरोधी के रूप में जाना जाता रहा है। शहद में ग्लूकोस व अन्य शर्कराएं तथा विटामिन, खनिज और अमीनो अम्ल भी होता है जिससे कई पौष्टिक तत्व मिलते हैं जीव को ठीक करने और उतकों के बढ़ने के उपचार में मदद करते हैं। अगर शहद को सील करके रखा जाए तो यह बरसों तक खराब नहीं होता क्योंकि इसमें सूक्ष्मजीव उत्पन्न नहीं होते है। इसके अलावा इसमें उपयोगी रासायनिक गुण हैं जिसके कारण बेकरी में इसका इस्तेमाल किया जाता है।

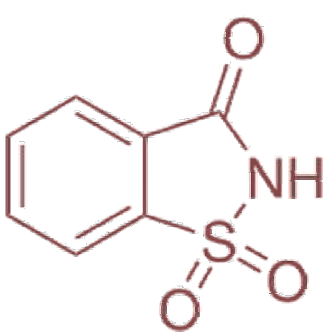
प्राकृतिक मधुरक

शहद : शहद का उपयोग चीनी के विकल्प में किया जाता है। यह प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। शहद में जो मीठापन होता है वह मुख्यतः ग्लूकोस और फ्रक्टोज के कारण होता है। शहद का प्रयोग औषधि रूप में भी होता है। प्राचीन काल से ही शहद को एक जीवाणुरोधी के रूप में जाना जाता रहा है। शहद में ग्लूकोस व अन्य शर्कराएं तथा विटामिन, खनिज और अमीनो अम्ल भी होता है जिससे कई पौष्टिक तत्व मिलते हैं जो घाव को ठीक करने और उतकों के बढ़ने के उपचार में मदद करते हैं। अगर शहद को सील करके रखा जाए तो यह बरसों तक खराब नहीं होता क्योंकि इसमें सूक्ष्मजीव उत्पन्न नहीं होते है। इसके अलावा इसमें उपयोगी रासायनिक गुण हैं जिसके कारण बेकरी में इसका इस्तेमाल किया जाता है।





साइक्लामेट सन् 1937 में आड्रिएथ और स्वेडा द्वारा अमेरिका में इसकी खोज की गई। इसे हैक्ज़ामिक अम्ल या साइक्लोहेक्सेनसल्फामिक अम्ल के नाम से भी जाना जाता है। यह सामान्यतः लवण के रूप में मिलता है। साइक्लामेट, साइक्लेमिक अम्ल का कैल्शियम या सोडियम लवण होता है जो साइक्लोहेक्साइलएमीन के सल्फोनेशन से प्राप्त किया जाता है। यह सुक्रोस से 30 गुना अधिक मीठा होता है। यह रंगहीन, गंधहीन, नुकीले आकार का क्रिस्टल हुता है। यह दूसरे मधुरकों विशेषकर के सैकरीन को साथ उपयोग में लाया जाता है। आमतौर पर 1 भाग सैकरीन तथा 10 भाग साइक्लामेट का मिश्रण भोजनोपरान्त भी मिठास को बनाए रखने के लिए उपयोग किया जाता है। इसका उपयोग च्युइंग गम, दुग्धोत्पादों, मिठाई, बेकरी उत्पादों तथा मिश्रण, टूथपेस्ट, दवाइयों आइसक्रीम इत्यादि में किया जाता है।



कृत्रिम मधुरक

सैकरीन : सैकरीन चीनी की तुलना में 300-500 गुना अधिक मीठा यौगिक है। सैकरीन का उपयोग कुकीज़, कैंडी, टूथपेस्ट तथा पेय पदार्थों को मीठा करने के लिए किया जाता है। इसका आणविक सूत्र $C_7H_5NO_3S$ है। चीनी की जगह सैकरीन का प्रयोग करीब सवा सौ साल पहले से किया जा रहा है। यह सफेद रंग का क्रिस्टलीय तथा गंधहीन चूर्ण है। इसे किडनी द्वारा सरलता से अवशोषित कर लिया जाता है तथा अपरिवर्तित रूप में शरीर से अपशिष्ट पदार्थ के रूप में त्याग दिया जाता है। इसका स्वाद चीनी के स्वाद से ज़रा अलग होता है। सैकरीन खाते वक्त मीठा लगता है परंतु खाने के बाद हल्के कड़वेपन का स्वाद देता है। यह अत्यधिक तापमान पर भी स्थिर होता है इसलिए बेकरी में इसका प्रयोग किया जाता है। सैकरीन की खोज सन् 1879 में रसायनशास्त्री फालवर्ग द्वारा की गयी थी। सैकरीन का उपयोग सॉस, अचार, चॉकलेट, मिठाई, डिब्बाबंद फलों एवं सब्जियों इत्यादि में भी किया जाता है।

सुक्रालोज : यह सुक्रोस से निर्मित होता है। सुक्रालोज की खोज सन् 1976 में हुई। इसमें हाइड्रोजन-ऑक्सीजन समूहों के साथ क्लोरीन भी उपस्थित होता है। प्रसंस्करण अथवा भंडारण के दौरान भी सुक्रालोज की मिठास एवं स्थिरता बनी रहती है इसलिए इसका उपयोग खाद्य एवं पेय पदार्थों में किया जाता है। अधिक तापमान पर भी इसका मिठास बना रहता है इसलिए इसका बेकरी में प्रयोग किया जाता है। यह चीनी की तुलना में 600 गुना अधिक मीठा होता है लेकिन कैलोरीमान शून्य होता है। इसका उपयोग दुग्धोत्पादों/डेअरी उत्पादों, डिब्बाबंद फलों, बेकरी उत्पादों, दवाइयों तथा शीतल पेय पदार्थों में किया जाता है।

एस्पार्टेम : एस्पार्टेम की खोज सन् 1965 में जेम्स श्लैटर ने की। यह मधुरक क्रिस्टलीय, सफेद रंग का, सुगंधहीन और चीनी से 200 गुना अधिक मीठा होता है। आजकल मधुरक के रूप में एस्पार्टेम सबसे अधिक उपयोग में लाया जाता है। यह ऐमीनो अम्लों- L-एस्पार्टिक और L-फिनाइलऐलेनिन के संयोग से बनता है। चूंकि यह प्रोटीन से बना होता है इसलिए इससे अल्प मात्रा में ऊर्जा प्राप्त होती है। दूसरे पेप्टाइडों की तरह एस्पार्टेम भी अधिक तापमान तथा pH पर स्थायी नहीं रहता है। इसलिए इसे बेकिंग उत्पादों में उपयोग नहीं किया जा सकता है। यह शरीर में अपने घटक यौगिकों में विभाजित हो जाता है इसलिए यह फिनाइलकीटोन्यूरिया नामक बीमारी से पीड़ित व्यक्तियों के लिए उचित नहीं माना गया है। इसका उपयोग चॉकलेट, आइसक्रीम, मिठाई, सॉस, टूथपेस्ट तथा दवाइयों इत्यादि में किया जाता है।

एसिसल्फेम-K : इसकी खोज सन् 1967 में क्लॉस तथा जेनसन ने की। सैकरीन की तरह इसका स्वाद भी खाने के बाद कड़वा लगता है। यह चीनी से लगभग 200 गुना अधिक मीठा होता है। यह शरीर में अन्य यौगिकों में परिवर्तित नहीं होता है तथा किडनी द्वारा आसानी से अपशिष्ट के तौर पर त्याग दिया जाता है। यह अत्यधिक तापमान पर भी स्थायी रहता है इसलिए इसका उपयोग बेकरी उत्पादों में किया जाता है। इसका उपयोग च्युइंग गम, मिठाई, टूथपेस्ट, दवाइयों, आइसक्रीम इत्यादि में भी किया जाता है।

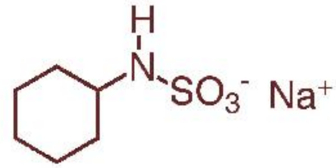
साइक्लामेट : सन् 1937 में आड्रिएथ और स्वेडा द्वारा अमेरिका में इसकी खोज की गई। इसे हैक्ज़ामिक अम्ल या साइक्लोहेक्सेनसल्फामिक अम्ल के नाम से भी जाना जाता है। यह सामान्यतः लवण के रूप में मिलता है। साइक्लामेट, साइक्लेमिक अम्ल का कैल्शियम या सोडियम लवण होता है जो साइक्लोहेक्साइलएमीन के सल्फोनेशन से प्राप्त किया जाता है। यह सुक्रोस से 30 गुना अधिक मीठा होता है। यह रंगहीन, गंधहीन, नुकीले

आकार का क्रिस्टल होता है। यह दूसरे मधुरकों विशेषकर के सैकरीन के साथ उपयोग में लाया जाता है। आमतौर पर 1 भाग सैकरीन तथा 10 भाग साइक्लामेट का मिश्रण भोजनोपरान्त भी मिठास को बनाए रखने के लिए उपयोग किया जाता है। इसका उपयोग च्युइंग गम, दुग्धोत्पादों, मिठाई, बेकरी उत्पादों तथा मिश्रण, टूथपेस्ट, दवाइयों, आइसक्रीम इत्यादि में किया जाता है।

नियोटेम : यह ऐमीनो अम्ल पर आधारित एक मधुरक है जो कि चीनी की तुलना में 7000-13000 गुना अधिक मीठा होता है। नियोटेम एस्पार्टिक अम्ल तथा फेनाइलएलेनीन के संयोग से बने डाईपेप्टाइड का व्युत्पन्न यौगिक है। इसलिए खाद्य तथा पेय पदार्थों में अन्य मधुरकों की तुलना में इसकी बहुत ही कम मात्रा उपयोग करने की जरूरत होती है। खाद्य एवं औषधि प्रशासन (FDA) द्वारा जुलाई 2002 में इसके व्यापक प्रयोग की स्वीकृति दी गई। यह रासायनिक रूप में एस्पार्टेम की तरह है परंतु यह अधिक स्थायी होता है तथा बहुत ही अल्प मात्रा में प्रयोग किया जाता है। इसका उपयोग च्युइंग गम, दुग्धोत्पादों, मिठाई, बेकिंग उत्पादों, टूथपेस्ट, दवाइयों, आइसक्रीम, इत्यादि बनाने में किया जाता है।

एलिटेम : एलिटेम एक न्यून-कैलोरी मधुरक है जिसका आविष्कार सन् 1980 में फ़ाइज़र कंपनी द्वारा किया गया। यह ऐमीनो अम्ल आधारित मधुरक है जो शर्करा की तुलना में 2000 गुना ज्यादा मीठा होता है। एलिटेम दो ऐमीनो अम्लों - L-एस्पार्टिक अम्ल और D-ऐलेनीन तथा एक अन्य ऐमीन यौगिक के परस्पर संयोग से निर्मित किया जाता है। यह काफी अधिक तापमान पर भी स्थायी रहता है तथा लम्बे समय तक इसका भंडारण किया जा सकता है। इसका प्रयोग पेयपदार्थों, दुग्धोत्पादों, ब्रेड, केक और पेस्ट्री, डिब्बाबंद फलों, मिठाइयों में किया जाता है। लेकिन इसे अभी तक केवल ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, मैक्सिको और चीन में प्रयोग की स्वीकृति मिली है। हमारे देश में इसके इस्तेमाल की अनुमति नहीं मिली है। उपरोक्त वैज्ञानिक चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे खानपान में मीठे स्वाद की कितनी महत्ता है। हमारे भोजन, जलपान, तथा दूसरी चीजों में मीठे स्वाद के लिए कितने तरह के यौगिकों का इस्तेमाल होता है। इनमें प्राकृतिक तथा कृत्रिम, दोनों तरह के रासायनिक यौगिक शामिल हैं। जरूरतों के चलते नये-नये तरह के मधुरकों के शोध तथा विकास का काम चलता रहता है। शोधकर्ताओं की कोशिश रहती है कि ये ईजाद किये गये नये यौगिक मानव स्वास्थ्य के लिए निरापद हों। खाद्य प्रौद्योगिकी पर चलने वाले इस अनुसंधान का उद्देश्य ही यही है कि मीठा स्वाद सभी के लिए सुलभ रहे।

kkm@hbcse.tifr.res.in

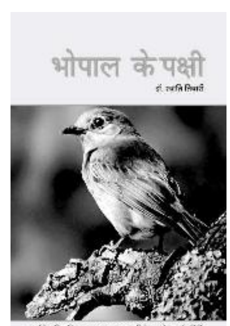


Sodium cyclamate

एलिटेम एक न्यून-कैलोरी मधुरक है जिसका आविष्कार सन् 1980 में फ़ाइज़र कंपनी द्वारा किया गया। यह ऐमीनो अम्ल आधारित मधुरक है जो शर्करा की तुलना में 2000 गुना ज्यादा मीठा होता है। एलिटेम दां ऐमीनो अम्लों - L-एस्पार्टिक अम्ल और D-ऐलेनीन तथा एक अन्य ऐमीन यौगिक के परस्पर संयोग से निर्मित किया जाता है। यह काफी अधिक तापमान पर भी स्थायी रहता है तथा लम्बे समय तक इसका भंडारण किया जा सकता है। इसका प्रयोग पेयपदार्थों, दुग्धोत्पादों, ब्रेड, केक और पेस्ट्री, डिब्बाबंद फलों, मिठाइयों में किया जाता है।

डॉ. स्वाति तिवारी का जन्म 17 फरवरी 1960 में धार म.प्र. में हुआ। एम.एस-सी (प्राणीशास्त्र), एलएलबी, एम.फिल तक शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात आपने समाजशास्त्र में शोधकार्य किया। कई संगठनों की संचालक डॉ. तिवारी का हिन्दी साहित्य में भी महत्वपूर्ण स्थान है। अब तक उनकी 15 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है जिसमें बैगनी फूलों वाला पेड़, अकेले होते लोग, स्वाति तिवारी की चुनिंदा कहानियां और सवाल आज भी जिन्दा हैं विशेष उल्लेखनीय है। आपको कई उल्लेखनीय सम्मान और पुरस्कार प्राप्त है जिसमें राष्ट्रीय मानवधिकार आयोग दिल्ली का सम्मान, वगेश्वरी सम्मान, राष्ट्रीय लाड़ली मीडिया पुरस्कार शामिल हैं। आप अफ्रीका और भारत के विश्व हिन्दी सम्मेलन में मध्यप्रदेश शासन का प्रतिनिधित्व कर चुकी हैं। भोपाल के पक्षी नामक पुस्तक में आपने प्रवासी पक्षियों के जीवन के वैज्ञानिक पक्ष उजागर किया है।

पक्षी सभी उम्र के व्यक्तियों के लिए आकर्षण का केंद्र बने रहते हैं। पक्षियों को जानने की जिज्ञासा जैसे - वे कहां से आते हैं और कहां पाए जाते हैं, उनका भोजन, अंडा और अन्य विशेषताओं से संबंधित जानकारी इस पुस्तक में उपलब्ध कराई गई है। लेखिका स्वयं जीव-विज्ञान की विद्यार्थी रही हैं और उन्होंने पक्षियों को अपने कैमरे में कैद कर पुस्तक के माध्यम से उपलब्ध कराया है। लेखिका को विश्वास है कि इसे पढ़कर पाठक स्वयं बर्ड वॉचिंग कर सकेंगे।



पर्यावरण संरक्षण हेतु ठोस कार्ययोजना जरूरी



शशांक द्विवेदी



राजस्थान मेवाड़ यूनिवर्सिटी के उपनिदेशक शशांक द्विवेदी 'टेक्नीकल टुडे' नामक पत्रिका का संपादन कर रहे हैं। वे विगत दो दशकों से विज्ञान संचारक और विज्ञान लेखन के रूप में भी कार्य कर रहे हैं। देश के प्रतिष्ठित विज्ञान पत्रिकाओं में आपके लेख नियमित रूप से प्रकाशित एवं चर्चित हुए हैं।

पूरी दुनिया की जलवायु में तेजी से परिवर्तन हो रहा है, बेमौसम आंधी, तूफ़ान और बरसात से हजारों लोगों की जान जा रही है साथ ही सभी ऋतु चक्रों में तेजी से बदलाव देखने को मिल रहा है। सच्चाई यह है कि पर्यावरण सीधे-सीधे हमारे अस्तित्व से जुड़ा मसला है। दुनिया भर में पर्यावरण सरंक्षण को लेकर काफी बातें, सम्मेलन, सेमिनार आदि हो रही है परन्तु वास्तविक धरातल पर उसकी परिणिति होती दिखाई नहीं दे रही है। जिस तरह क्लायमेट चेंज दुनियाँ में भोजन पैदावार और आर्थिक समृद्धि को प्रभावित कर रहा है, उससे आने वाले समय में जिंदा रहने के लिए जरूरी चीजें इतनी महंगी हो जाएगीं कि उससे देशों के बीच युद्ध जैसे हालात पैदा हो जाएंगे। यह खतरा उन देशों में ज्यादा होगा जहाँ कृषि आधारित अर्थव्यवस्था है। पर्यावरण का सवाल जब तक तापमान में बढोत्तरी से मानवता के भविष्य पर आने वाले खतरों तक सीमित रहा, तब तक विकासशील देशों का इसकी ओर उतना ध्यान नहीं गया। परन्तु अब जलवायु चक्र का खतरा खाद्यान्न उत्पादन पर पड रहा है, किसान यह तय नहीं कर पा रहे है कब बुवाई करे और कब फसल काटें। तापमान में बढ़ोत्तरी जारी रही तो खाद्य उत्पादन चालीस प्रतिशत तक घट जायेगा, इससे पूरे विश्व में खाद्यान्नों की भारी कमी हो जायेगी । ऐसी स्थिति विश्व युद्ध से कम खतरनाक नहीं होगी। एक नई अमेरिकी स्टडी में दावा किया गया है कि तापमान में एक डिग्री तक का इजाफा साल 2030 तक अफ्रीकी सिविल वार होने के रिस्क को 55 प्रतिशत तक बढा सकता है। यानी महज अगले 12 वर्षों में अफ्रीकी देशों में संकट गहरा सकता है। यह स्टडी यूनिवर्सिटी ऑफ कैलीफोर्निया के इकानमिस्ट मार्शल बर्क द्वारा की गई है। इसमें कहा गया है कि जलवायु परिवर्तन के कारण बनी स्थितियों में अकेले अफ्रीका के उप सहारा इलाके में युद्ध भड़कने से 3 लाख 90 हजार मौतें हो सकती हैं । इन युद्धों के बहुत विनाशकारी होने की आशंका है ।

पर्यावरण संरक्षण के लिए 'बीट प्लास्टिक'

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन मानव जीवन के अस्तित्व के लिये सबसे बड़ी चुनौती है। 18वीं शताब्दी में प्रारंभ हुई औद्योगिक क्रांति ने हमें मुख्यतः जीवाश्म ईंधन पर निर्भर बना दिया है और हम बिजली से लेकर कारखानों और कृषि तक पूरी तरह से इसी पर निर्भर हैं। लेकिन यह ईंधन बहुत बड़ी मात्रा में ऐसी गैसों का उत्सर्जन करते हैं जो सूरज की रोशनी को पूरी तरह तक धरती पर आने से रोकते हैं और उसे वातावरण में ही रोक

देते हैं। यही ग्लोबल वार्मिंग का मुख्य कारण है। इसके चलते धरती का तापमान बढ़ रहा है और इसके लिए दुनिया भर में प्लास्टिक का बढ़ता उपयोग भी जिम्मेदार है। प्लास्टिक के उपयोग को हमें हर हाल में अब कम करना होगा नहीं तो इसके नतीजे बेहद भयावह हो सकते हैं।

संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, हर वर्ष दुनियाभर में 500 अरब प्लास्टिक बैग उपयोग होते हैं, जो सभी प्रकार के अपशिष्टों का दस प्रतिशत है। हमारे देश में प्रतिदिन 15000 टन प्लास्टिक अपशिष्ट निकलता है, जिसकी मात्रा निरंतर बढ़ती जा रही है। प्लास्टिक के बढ़ते उपयोग का अंदाजा इसी से लगा सकते हैं कि पूरे विश्व में इतना प्लास्टिक हो गया है कि इस प्लास्टिक से पृथ्वी को पाँच बार लपेटा जा सकता है। समुद्र में करीब 80 लाख टन प्लास्टिक बहा दिया जाता है, जिसका अर्थ है कि प्रति मिनट एक ट्रक कचरा समुद्र में डाला जा रहा है। यह स्थिति पृथ्वी के वातावरण के लिए बेहद हानिकारक हो सकती है क्योंकि प्लास्टिक को अपधटित होने में 450 से 1000 वर्ष लग जाते हैं। प्लास्टिक केमिकल बीपीए शरीर में विभिन्न स्त्रोतों से प्रवेश करता है। एक अध्ययन में पाया गया कि 6 साल से बड़े 93 प्रतिशत अमेरिकन जनसंख्या प्लास्टिक केमिकल BPA (कुछ किस्म का प्लास्टिक साफ और कठोर होती है, जिसे बीपीए बेस्ड प्लास्टिक कहते हैं, इसका इस्तेमाल पानी की बॉटल, खेल के सामान, सीडी और डीवीडी जैसी कई वस्तुओं में किया जाता है) को अवशोषित कर लेती है। अरबों पाउंड प्लास्टिक पृथ्वी के पानी स्त्रोतों खासकर समुद्रों में पड़ा हुआ है। पचास प्रतिशत प्लास्टिक की वस्तुएं हम सिर्फ एक बार काम में लेकर फेंक देते हैं। प्लास्टिक के उत्पादन में पूरे विश्व के कुल तेल का आठ प्रतिशत तेल खर्च हो जाता है। प्लास्टिक को पूरी तरह से खत्म होने में 500 से 1,000 साल तक लगते हैं। प्लास्टिक के एक बेग में इसके वजन से 2000 गुना तक सामान उठाने की क्षमता होती है।

प्लास्टिक नॉन-बॉयोडिग्रेडेबल होता है। नॉन-बॉयोडिग्रेडेबल ऐसे पदार्थ होते हैं जो बैक्टीरिया के द्वारा ऐसी अवस्था में नहीं पहुँच पाते जिससे पर्यावरण को कोई नुकसान न हो। कचरे की रिसायकलिंग बेहद जरूरी है क्योंकि प्लास्टिक की एक छोटी सी पोलिथिन को भी पूरी तरह से छोटे पार्टिकल्स में तब्दील होने में हजारों सालों का समय लगता है और इतने ही साल लगते हैं प्लास्टिक की एक छोटी सी पोलिथिन को गायब होने में। जब प्लास्टिक को कचरे के तौर पर फेंका जाता है यह अन्य चीजों की तरह खुदबखुद खत्म नहीं होता। जैसा कि हम जानते हैं इसे खत्म होने में हजारों साल लगते हैं यह पानी के स्रोतों में मिलकर पानी प्रदूषित करता है।

वैश्विक कार्बन उत्सर्जन में कमी लाना जरुरी

नेचर क्लाइमेट चेंज एंड अर्थ सिस्टम साइंस डाटा जर्नल में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार चीन, अमेरिका और यूरोपीय संध के वैश्विक कार्बन उत्सर्जन में क्रम से 26,15 और 11 फीसद की हिस्सेदारी है जबकि भारत का आंकड़ा सात फीसद है। इसमें बताया गया है कि प्रति व्यक्ति कार्बन उत्सर्जन के मामले में भारत की हिस्सेदारी 2.44 टन है जबकि अमेरिका, यूरोपीय संध और चीन की प्रति व्यक्ति हिस्सेदारी क्रम से 19.86 टन, 8.77 और 8.13 टन है। यह रिपोर्ट ब्रिटेन के ईस्ट एंजलिया विश्वविद्यालय के ग्लोबल कार्बन परियोजना द्वारा किये गये एक अध्ययन पर आधारित है। दुनिया भर में कार्बन उत्सर्जन की बढती दर ने पर्यावरण और खासकर जैव विविधता को बड़े पैमानें पर नुकसान पहुँचाया है, एक रिपोर्ट के अनुसार पिछले एक दशक में विलुप्त प्रजातियों की संख्या पिछले एक हजार वर्ष के दौरान विलुप्त प्रजातियों की संख्या के बराबर है। जलवायु में तीव्र गति से होने वाले परिवर्तन से देश की पचास प्रतिशत जैव विविधता पर संकट है। अगर तापमान से 1.5 से 2.5 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि होती है तो 25 प्रतिशत प्रजातियां



दुनिया भर में कार्बन उत्सर्जन की बढती दर ने पर्यावरण और खासकर जैव विविधता को बड़े पैमाने पर नुकसान पहुँचाया है, एक रिपोर्ट के अनुसार पिछले एक दशक में विलुप्त प्रजातियाँ की संख्या पिछले एक हजार वर्ष के दौरान विलुप्त प्रजातियों की संख्या के बराबर है। जलवायु में तीव्र गति से होने वाले परिवर्तन से देश की पचास प्रतिशत जैव विविधता पर संकट है। अगर तापमान से 1.5 से 2.5 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि होती है तो 25 प्रतिशत प्रजातियां पूरी तरह समाप्त हो जाएंगी। अंतरराष्ट्रीय संस्था वर्ल्ड वाइल्ड फिनिलशग ऑर्गेनाइजेशन ने अपनी रिपोर्ट में चेतावनी दी है कि 2030 तक घने जंगलों का 60 प्रतिशत भाग नष्ट हो जाएगा। वनो के कटान से वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड की कमी से कार्बन अधिशोषण ही वनस्पतियों व प्राकृतिक रूप से स्थापित जैव विविधता के लिए खतरा उत्पन्न करेगी।





पूरी तरह समाप्त हो जाएंगी। अंतरराष्ट्रीय संस्था वर्ल्ड वाइल्ड फिनिशिंग ऑर्गेनाइजेशन ने अपनी रिपोर्ट में चेतावनी दी है कि 2030 तक धने जंगलों का 60 प्रतिशत भाग नष्ट हो जाएगा। वनों के कटान से वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड की कमी से कार्बन अधिशोषण ही वनस्पतियों व प्राकृतिक रूप से स्थापित जैव विविधता के लिए खतरा उत्पन्न करेगी। मौसम के मिजाज में होने वाला परिवर्तन ऐसा ही एक खतरा है। इसके परिणाम स्वरूप हमारे देश के पश्चिमी घाट के जीव-जंतुओं की अनेक प्रजातियां तेजी से लुप्त हो रही हैं।

एक तिहाई से अधिक प्रजातियाँ विलुप्ति के कगार पर

समूचे विश्व में 2 लाख 40 हजार किस्म के पौधे और 10 लाख 50 हजार प्रजातियों के प्राणी हैं। इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजनर्वेशन ऑफ नेचर (आईयूसीएन) एक की रिपोर्ट में कहा कि विश्व में जीव-जंतुओं की 47677 विशेष प्रजातियों में से एक तिहाई से अधिक प्रजातियाँ यानी 15890 प्रजातियों पर विलुप्ति का खतरा मंडरा रहा है। आईयूसीएन की रेड लिस्ट के अनुसार स्तनधारियों की 21 फीसदी, उभयचरों की 30 फीसदी और पक्षियों की 12 फीसदी प्रजातियाँ विलुप्ति की कगार पर हैं। वनस्पतियों की 70 फीसदी प्रजातियों के साथ ताजा पानी में रहने वाले सरिसृपों की 37 फीसदी प्रजातियों और 1147 प्रकार की मछलियों पर भी विलुप्ति का खतरा मंडरा रहा है। ये सब इंसान के लालच और जगलों के कटाव के कारण हुआ है। गंदगी साफ करने में कौआ और गिद्ध प्रमुख हैं। गिद्ध शहरों ही नहीं, जंगलों से खत्म हो गए। 99 प्रतिशत लोग नहीं जानते कि गिद्धों के न रहने से हमने क्या खोया। लोग कहते हैं कि उल्लू से क्या फायदा, मगर किसान जानते हैं कि वह खेती का मित्र है, जिसका मुख्य भोजन चूहा है। भारतीय संस्कृति में पशु पक्षियों के संरक्षण और संवर्धन की बात है। इसीलिए अधिकांश हिंदू धर्म में देवी-देवताओं के वाहन पशु-पक्षियों को बनाया गया है। एक और बात बड़े खतरे का अहसास कराती है कि एक दशक में विलुप्त प्रजातियों की संख्या पिछले एक हजार वर्ष के दौरान विलुप्त प्रजातियों की संख्या के बराबर है।

जलवायु परिवर्तन के कारण एशिया को बाढ़, गर्मी के कारण मृत्यु, सूखा तथा पानी से संबंधित खाद्य की कमी का सामना करना पड़ सकता है। कृषि आधारित अर्थव्यवस्था वाले भारत जैसे देश जो केवल मानसून पर ही निर्भर हैं, के लिए यह काफी खतरनाक हो सकता है। जलवायु परिवर्तन की वजह से दक्षिण एशिया में गेहूं की पैदावार पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है । साथ ही वैश्विक खाद्य उत्पादन भी धीरे-धीरे घट रहा है। जलवायु परिवर्तन से न केवल फसलों की उत्पादकता प्रभावित हो रही है बल्कि उनकी पौष्टिकता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

प्रदूषण से खाद्य उत्पादन में कमी

पिछले दिनों पर्यावरण और वायु प्रदूषण का भारतीय कृषि पर प्रभाव शीर्षक से प्रोसिडिंग्स ऑफ नेशनल एकेडमी ऑफ साइंस में प्रकाशित एक शोध पत्र के नतीजों ने सरकार, कृषि विशेषज्ञों और पर्यावरणविदों की चिंता बढ़ा दी है। शोध के अनुसार भारत के अनाज उत्पादन में वायु प्रदूषण का सीधा और नकारात्मक असर देखने को मिल रहा है। देश में धुएं में बढ़ोतरी की वजह से अनाज के लक्षित उत्पादन में कमी देखी जा रही है। करीब 30 सालों के आंकड़े का विश्लेषण करते हुए वैज्ञानिकों ने एक ऐसा सांख्यिकीय मॉडल विकसित किया जिससे यह अंदाजा मिलता है कि घनी आबादी वाले राज्यों में वर्ष 2010 के मुकाबले वायु प्रदूषण की वजह से गेहूं की पैदावार 50 फीसदी से कम रही। कई जगहों पर खाद्य उत्पादन में करीब 90 फीसदी की कमी धुएं की वजह से देखी गई जो कोयला और दूसरे प्रदूषक तत्वों की वजह से हुआ। भूमंडलीय तापमान वृद्धि और वर्षा के स्तर की भी दस फीसदी बदलाव में अहम भूमिका है। कैलिफॉर्निया विश्वविद्यालय में वैज्ञानिक और शोध की लेखिका जेनिफर बर्नी के अनुसार ये आंकड़े चौंकाने वाले हैं हालांकि इसमें बदलाव संभव है। संयुक्त राष्ट्र में जलवायु परिवर्तन के लिए बने अंतर सरकारी पैनल(आइपीसीसी) रिपोर्ट में भी इसी तरह की चेतावनी दी गई थी । 'जलवायु परिवर्तन - प्रभाव, अनुकूलन और जोखिम' शीर्षक से जारी इस रिपोर्ट में कहा गया है कि जलवायु परिवर्तन का प्रभाव पहले से ही सभी महाद्वीपों और महासागरों में विस्तृत रूप ले चुका है। रिपोर्ट के अनुसार जलवायु परिवर्तन के कारण एशिया को बाढ़, गर्मी के कारण मृत्यु, सूखा तथा पानी से संबंधित खाद्य की कमी का सामना करना पड़ सकता है। कृषि आधारित अर्थव्यवस्था वाले भारत जैसे देश जो केवल मानसून पर ही निर्भर हैं, के लिए यह काफी खतरनाक हो सकता है। जलवायु परिवर्तन की वजह से दक्षिण एशिया में गेहूं की पैदावार पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। साथ ही वैश्विक खाद्य उत्पादन भी धीरे-धीरे घट रहा है। एक खास बात यह भी है कि जलवायु परिवर्तन से न केवल फसलों की उत्पादकता प्रभावित हो रही है बल्कि उनकी पौष्टिकता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है । एशिया में तटीय और शहरी इलाकों में बाढ़ की वृद्धि से बुनियादी ढांचे, आजीविका और बस्तियों को काफी

प्लास्टिक को कहें न



पर्यावरण संरक्षण की दिशा में पहल करते हुए हम सब को सबसे पहले प्लास्टिक का उपयोग कम से कम करने का संकल्प लेना चाहिए। साथ ही प्लास्टिक का उपयोग कम करने के लिए कुछ उपाय भी अपनानें होंगे । मसलन प्लास्टिक के बैग्स को संभाल कर रखें। इन्हें कई बार इस्तेमाल में लाएं। सामान खरीदने जाने पर अपने साथ कैरी बेग (कपड़े या कागज के बने) लेकर जाएं। ऐसे प्लास्टिक के इस्तेमाल से बचें जिसे एक बार इस्तेमाल के बाद ही फेंकना होता है जैसे प्लास्टिक के पतले ग्लास, तरल पदार्थ पीने की स्ट्रॉ और इसी तरह का अन्य सामान। प्लास्टिक बैग और पोलिएस्ट्रीन फोम को कम से कम इस्तेमाल करने की कोशिश करें। इनका रिसायकल रेट बहुत कम होता है। मिट्टी के पारंपरिक तरीके से बने बर्तनों के इस्तेमाल को बढ़ावा दें। सरकार और पर्यावरण संस्थाओं के अलावा भी हर एक नागरिक की पर्यावरण के प्रति कुछ खास जिम्मेदारियां हैं जिन्हें अगर समझ लिया जाए तो पर्यावरण को होने वाली हानि को बहुत हद तक कम किया जा सकता है। खुद पर नियंत्रण इस समस्या को काफी हद तक कम कर सकता है।



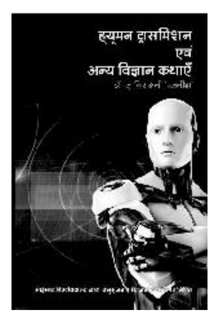
नुकसान हो सकता है। ऐसे में मुंबई, कोलकाता, ढाका जैसे शहरों पर खतरे की संभावना बढ़ सकती है। पिछले दिनों पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने भी जलवायु परिवर्तन पर इंडियन नेटवर्क फॉर क्लाइमेट चेंज असेसमेंट की रिपोर्ट जारी करते हुए चेताया था कि यदि पृथ्वी के औसत तापमान का बढ़ना इसी प्रकार जारी रहा तो अगामी वर्षो में भारत को इसके दुष्परिणाम झेलने होंगे। इसका सीधा असर देश की कृषि व्यवस्था पर भी पड़ेगा ।

दुनिया भर के देशों की जलवायु और मौसम में परिवर्तन हो रहा है। पिछले दो सालों में देश के कई इलाकों में बेमौसम बरसात और सूखे की वजह से किसानों की बड़ी आबादी बेहद मुश्किल दौर से गुजर रही है । पिछले साल अचानक आई बेमौसम बारिश ने कहर ढाते हुए कई राज्यों की कुल 50 लाख हेक्टेयर भूमि में खड़ी फसल बर्बाद कर दिया था। मौसम में तीव्र परिवर्तन हो रहा है, ऋतु चक्र बिगड़ चुके है। मौसम के बिगड़े हुए मिजाज ने देश भर में समस्या पैदा कर दी है। सच्चाई यह है कि देश में कृषि क्षेत्र में मचे हाहाकार का सीधा संबंध जलवायु परिवर्तन से है। यह सब जलवायु परिवर्तन और हमारे द्वारा पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने की वजह से हो रहा है। जलवायु परिवर्तन संपूर्ण मानवता के लिये एक बहुत बड़ा खतरा है। एक अहम् बात और है कि सौर ,विंड जैसी वैकल्पिक ऊर्जा पर जोर देकर हम अपनी उर्जा जरूरतों के साथ साथ ग्लोबल वार्मिंग पर काबू कर सकतें है। बड़े पैमाने पर वैकल्पिक उर्जा के उपयोग और उत्पादन के लिए अब पूरे विश्व को एक साथ आना होगा तभी कुछ हद तक वैश्विक कार्बन उत्सर्जन में कुछ कमी आ पायेगी।

कुल मिलाकर देश के प्राकृतिक संसाधनों का ईमानदारी से दोहन और पर्यावरण के संरक्षण के लिए सरकारी प्रयास के साथ साथ जनता की सकारात्मक भागीदारी की जरुरत है। जनता के बीच जागरूकता फैलानी होगी, तभी इसका संरक्षण हो पायेगा। पर्यावरण संरक्षण का सवाल पृथ्वी के अस्तित्व से जुड़ा है। इसलिए हम सभी को इसके लिए संजीदा होना होगा।

dwivedi.shashank15@gmail.com

डॉ. जाकिर अली 'रजनीश' का जन्म 1 जनवरी 1975 को लखनऊ में हुआ। हिन्दी में स्नात्कोत्तर, पी.एच-डी. उपाधि प्राप्त की और इन दिनों राज्य कृषि उत्पादन मंडी परिसर उत्तरप्रदेश में कार्यरत हैं। आपने दूरदर्शन तथा आकाशवाणी के लिये भी लेखन किया। वैज्ञानिक उपन्यास, विज्ञान कथा संग्रह, पटकथा लेखन पुस्तक, वैज्ञानिकों की जीवनी सहित आपने अनेक वैज्ञानिक पुस्तकों का सृजन किया। आपको जर्मनी सहित देश-विदेश दो दर्जन संस्थाओं से सम्मानित - पुरस्कृत किया गया है। पुस्तक में नौ बाल विज्ञान कथाएँ एवं ह्यूमन ट्रांसमिशन नामक एक लघु बाल उपन्यास सम्मिलित हैं। विज्ञान कथाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त अंधविश्वासों का खुलासा बड़े रोचक तरीके से किया गया है जबकि उपन्यास में एक वैज्ञानिक के स्थानांतरित होने का सजीव चित्रण किया गया है।



अग्नि-5 सफलता की महागाथा



प्रमोद भार्गव



प्रमोद भार्गव एक पत्रकार और विज्ञान संचारक के रूप में देशभर में जाने जाते हैं वहीं उनका दूसरा पक्ष एक लोकप्रिय कथाकार का भी है। समकालीन परिदृश्य और समसामयिक विषयों जिनमें विज्ञान भी शामिल है, पर प्रमोद भार्गव की गहरी नज़र रहती है। वे तात्कालिक विज्ञान-अनुसंधान और हलचल पर लिखने के लिये खासे चर्चित हैं। प्रमोद भार्गव म.प्र. के शिवपुरी में निवास करते हैं।

सफलता की एक नई महागाथा लिखते हुए भारत ने परमाणु क्षमता से युक्त अंतरमहाद्वीपीय बैलिस्टिक मिसाइल अग्नि-5 का सफल परीक्षण किया है। 5000 से 8000 कि.मी. से भी अधिक दूरी पर स्थित लक्ष्य को भेदने में सक्षम इस प्रक्षेपास्त्र को ओड़ीसा के बालासोल जिले के अब्दुल कलाम समुद्री द्वीप से आकाश में छोड़ा गया। यह प्रक्षेपण, मोबाइल प्रक्षेपण यान के जरिए किया गया। भारत इस परीक्षण के पहले से ही 5 हजार से 55 हजार किमी की दूरी तक मार करने की मिसाइल क्षमता वाले वैश्विक समूह में शामिल हैं। इसके पहले यह ताकत रूस, अमेरिका, चीन, फ्रांस और ब्रिटेन के पास थी। हालांकि लंबी दूरी की मारक क्षमता वाली मिसाइल अग्नि-5 का यह छठा प्रायोगिक परीक्षण है। पहला परीक्षण 19 अप्रैल 2012, दूसरा 15 सितंबर 2013, तीसरा 10 सितंबर 2016, चौथा 26 दिसंबर 2016 और पांचवां परीक्षण 18 जनवरी 2018 को किया गया था। अब यह छठा परीक्षण 3 जून 2018 को किया गया है। 50 टन वजनी यह मिसाइल 17.5 मीटर लंबी है। यह अपने साथ एक टन भार का विस्फोटक ले जाने में समर्थ है। इसके साथ ही भारत अमेरिका, रूस, चीन और फ्रांस के साथ इंटर कांटिनेंटल बैलेस्टिक मिसाइल के क्लब में शामिल हो गया है। इन मिसाइलों की खास बात यह है कि ये सभी स्वदेश में ही विकसित की गई तकनीकों से आविष्कृत की गई हैं। इससे जाहिर होता है कि हमारे वैज्ञानिकों को प्रयोग के उचित अवसर और वातावरण दे दिए जाएं तो वे अपनी मेघा का उपयोग करके वैज्ञानिक आविष्कारों के क्षेत्र में क्रांति ला सकते है।

बीस मिनट में पाँच हजार किलोमीटर की दूरी तक का अचूक निशाना साधने वाली बैलेस्टिक मिसाइल का परीक्षण देश के लिए सामरिक दृष्टि से तो महत्वपूर्ण हैं ही, सेना एवं जनता का मनोबल मजबूत करने की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। क्योंकि हमें यह कामयाबी आशंकाओ के उस संक्रमण काल में मिली है, जब भारत चीन से पिछड़ रहा है और देश की सुरक्षा संबंधी नीतियाँ बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हवाले करने के उद्देश्य से बनाई जा रही हैं। इन प्रयोगों से साबित हुआ है कि वैज्ञानिक अनुसाधनों में नवोन्मेष के लिए पूंजीपतियों की शरण में जाने की जरूरत नहीं है? मसलन शोध केंद्रो में निजी पूंजी निवेश जरूरी है, ऐसी विरोधावासी अटकलों में 85 प्रतिशत स्वदेशी तकनीक से निर्मित अग्नि 5 का छठा परीक्षण यह उम्मीद जगाती है कि हम देशज ज्ञान, स्थानीय संसाधन और बिना किसी बाहरी पूंजी के वैज्ञानिक उपलब्धियाँ हासिल करने में सक्षम हैं। वैसे भी पश्चिमी देशों ने भारत को मिसाइल तकनीक देने पर प्रतिबंध लगाया हुआ है। इस लिहाज से यह उपलब्धि पश्चिमी देशों के लिए भी आईना दिखाना है। सामरिक महत्व के हथियार यदि हम

अपने ही बूते बनाएगें तो हमारी गोपनीयता भंग होने का खतरा भी नहीं रहेगा?

भारत मे रक्षा उपकरणों की उपलब्धता की दृष्टि से प्रक्षेपास्त्र श्रृंखला प्रणाली की अहम भूमिका है। अब तक इस कड़ी में देश के पास पृथ्वी से वायु में और समुद्री सतह से दागी जा सकने वाली मिसाइलें ही उपलब्ध थीं लेकिन अग्नि 5 ऐसी अद्‌भुत मिसाइल हैं, जो सड़क और रेलमार्ग पर चलते हुए भी दुश्मन पर हमला बोल सकती है। इस श्रृंखला में अग्नि-1 की मारक क्षमता 700 किमी, अग्नि-2 की 2000 किमी, अग्नि-3 की 3000 किमी, अगिन-4 की 3500 किमी और अग्नि-5 की 5000 किमी है और इस छठी मिसाइल की मारक क्षमता आठ हजार किमी तक है। यह जमीन से जमीन पर मार करने वाली मिसाइल है। भारत ने अग्नि-1,2,3 मिसाइलों के परीक्षण पाकिस्तान को आँख दिखाने की दृष्टि से किए है, जबकि अग्नि-4, 5 एवं 6 के परीक्षण चीन को ध्यान में रखकर किए गए है। भारत से चीन की 3488 किमी लंबी सीमा जुड़ी है, जो अधिकांश जगह विवादित है। अब इस मिसाइल की जद में संपूर्ण एशिया और अफ्रीका महाद्वीप के साथ यूरोप का भी बड़ा हिस्सा आ गया है। यह मिसाइल एक बार छोड़ने के बाद रोकी नहीं जा सकती है। इसे सड़क के रास्ते कहीं भी पहुँचाया जा सकता है। इस खूबी के कारण इस मिसाइल को दुश्मन के उपग्रह की निगाहों से भी बचाया जा सकता है। भारत के पास यह सबसे लंबी दूरी का निशाना साधने वाली मिसाइल हो गई है। इसके जरिए हम दुश्मन देश के उपग्रह भी नष्ट करने में सक्षम हो गए हैं। यह चीन की दंडपेंग मिसाइल का जबाव देने में भी सक्षम है। हालांकि हमारा जन्मजात दुश्मन देश पाकिस्तान भी मिसाइल निर्माण के क्षेत्र में लगातार प्रगति कर रहा है। उसके पास शाहीन-एक, 700 किमी, शाहीन-दो, 2000 किमी और शाहीन-तीन, 2750 किमी मारक क्षमता की मिसाइलें तैयार हैं। वह तैमूर नाम से 5000 किमी तक की मारक क्षमता वाली मिसाइल तैयार करने में भी लगा है।

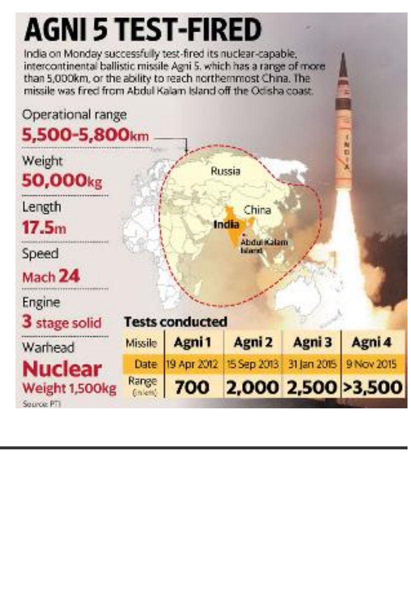
इसके निर्माण में कैनेस्तर तकनीक का इस्तेमाल किए जाने से इनकी खूबी यह भी है कि जासूसी उपकरण और उपग्रह भी यह मालूम नहीं कर पाएंगे कि इसे कहाँ से दागा गया है और यह किस दिशा में उड़ान भर रही है। क्योंकि यह तीन चरणों में 800 किमी तक की ऊँचाई पर उड़ान भरने में सक्षम है। इसलिए दुश्मन देश को इसे बीच में ही नष्ट करना नामुमकिन होगा। इसकी खासियत यह भी है कि इसे एक बार छोड़ने के बाद लक्ष्य साधने वाले सैनिक व वैज्ञानिक भी रोक नहीं पाएंगे। 50 टन वजनी इस मिसाइल में एक हजार किलोग्राम परमाणु हथियार ले जाने की क्षमता है। इसकी लंबाई 17.5 मीटर और चौड़ाई 2 मीटर है। अमेरिका को छोड़ संपूर्ण यूरोप, एश्यिा और अफ्रीका इसकी मारक क्षमता के दायरे में होंगे।

अग्नि 5 के सफल परिक्षण के बाद चीन समेत कई विकसित देशों ने यह आशंका जताई हैं कि इस परीक्षण के बाद एशियाई परिक्षेत्र में हथियारों का भण्डारण करने की होड़ लगेगी। हालांकि यह सच्चाई नहीं है। पाकिस्तान ईरान व कोरिया पहले से ही मिसाइलों के निर्माण और उनके परीक्षण में लगे हैं। विकसित व घातक हथियारों के कारोबार में लगे देश भी अपने हथियारों को बेचने के लिए कई देशों को उकसाने में लगे रहते हैं। आज पूरी दुनिया को भस्मासुर साबित हो रहे इस्लामिक आंतकवादियों को हथियार मुहैया कराने का काम यूरोपीय देशों ने अपने हथियार खपाने के लिए ही किया था। पाकिस्तान पोषित कश्मीर में आतंकवाद और ओड़ीसा व छत्तीसगढ़ में पसरा चीन द्वारा पोषित माओवादी उग्रवाद ऐसी ही बदनीयति का विस्तार हैं। हालांकि इस परीक्षण के बाद भारत के प्रति कालांतर में कई देशों की सामारिक रणनीति में बदलाव देखने को मिल सकता है।

भारत में एकीकृत विकास कार्यक्रम की शुरूआत 1983 में इंदिरा गांधी के कार्यकाल में हुई थी। इसका मुख्य रूप से उद्‌देश्य देशज तकनीक व स्थानीय संसाधनों के



इसके निर्माण में कैनेस्तर तकनीक का इस्तेमाल किए जाने से इनकी खूबी यह भी है कि जासूसी उपकरण और उपग्रह भी यह मालूम नहीं कर पाएंगे कि इसे कहाँ से दागा गया है और यह किस दिशा में उड़ान भर रही है। क्योंकि यह तीन चरणों में 800 किमी तक की ऊँचाई पर उड़ान भरने में सक्षम है। इसलिए दुश्मन देश को इसे बीच में ही नष्ट करना नामुमकिन होगा। इसकी खासियत यह भी है कि इसे एक बार छोड़ने के बाद लक्ष्य साधने वाले सैनिक व वैज्ञानिक भी रोक नहीं पाएंगे। 50 टन वजनी इस मिसाइल में एक हजार किलोग्राम परमाणु हथियार ले जाने की क्षमता है। इसकी लंबाई 17.5 मीटर और चौड़ाई 2 मीटर है। अमेरिका को छोड़ संपूर्ण यूरोप, एश्यिा और अफ्रीका इसकी मारक क्षमता के दायरे में होंगे।



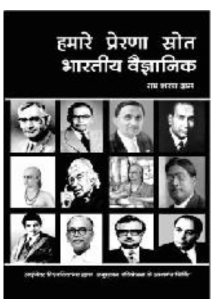


आधार पर मिसाइल के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता हासिल करना था। इस परियोजना के अंतर्गत ही अग्नि, पृथ्वी, आकाश और त्रिशूल मिसाइलों का निर्माण किया गया। टैंको को नष्ट करने वाली मिसाइल नाग भी इसी कार्यक्रम का हिस्सा है। पश्चिमी देशों को चुनौती देते हुए यह देशज तकनीक भारतीय वैज्ञानिकों ने इंदिरा गांधी के प्रोत्साहन से इसलिए विकसित की थी, क्योंकि सभी यूरोपीय देशों ने भारत को मिसाइल तकनीक देने से इंकार कर दिया था। भारत द्वारा पोखरण में किए गए पहले परमाणु विस्फोट के बाद रूस ने भी उस आरएलजी तकनीक को देने से मना कर दिया था, जो एक समय तक मिलती रही थी। किंतु एपीजे अब्दुल कलाम की प्रतिभा और सतत सक्रियता से हम मिसाइल क्षेत्र में मजबूती से आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ते रहे हैं।

अब्दुल कलाम की सेवानिवृत्ति के बाद इस काम को गति महिला वैज्ञानिक टीसी थॉमस ने दी हुई है। श्रीमती थॉमस आईजीएमडीपी में अग्नि 5 अनुसंधान की परियोजना निदेशक हैं। उन्हें भारतीय प्रक्षेपास्त्र परियोजना की पहली महिला निदेशक होने का भी श्रेय हासिल है। 27 साल पहले टीसी थॉमस ने एक वैज्ञानिक की हैसियत से इस परियोजना में नौकरी की शुरूआत की थी। अग्नि 5 से पहले उनका सुरक्षा के क्षेत्र में प्रमुख अनुसांधन 'री एंट्री व्हीकल सिस्टम' विकसित करना था। इस प्रणाली की विशिष्टता है कि जब मिसाइल वायुमण्डल में दोबारा प्रवेश करती है तो अत्याधिक तापमान 3000 डिग्री सेल्सियस तक पैदा हो जाता है। इस तापमान को मिसाइल सहन नहीं कर पाती और वह लक्ष्य भेदने से पहले ही जलकर खाक हो जाती है। आरवीएस तकनीक बढ़ते तापमान को नियंत्रण में रखती हैं, फलस्वरूप मिसाइल बीच में नष्ट नहीं होती। इस उपलब्धि को हसिल करने के बाद से ही टीसी थॉम को 'मिसाइल लेडी' अर्थात् 'अग्नि-पुत्री' कहा जाने लगा। श्रीमती थॉमस को रक्षा उपकारणों के अनुसांधन पर इतना नाज है कि उन्होंने अपने बेटे तक का नाम लड़ाकू विमान 'तेजस' के नाम पर तेजस थॉमस रखा है।

अत्याधिक तापमान 3000 डिग्री सेल्सियस तक पैदा हो जाता है। इस तापमान को मिसाइल सहन नहीं कर पाती और वह लक्ष्य भेदने से पहले ही जलकर खाक हो जाती है। आरवीएस तकनीक बढ़ते तापमान को नियंत्रण में रखती हैं, फलस्वरूप मिसाइल बीच में नष्ट नहीं होती। इस उपलब्धि को हसिल करने के बाद से ही टीसी थॉम को 'मिसाइल लेडी' अर्थात् 'अग्नि-पुत्री' कहा जाने लगा।

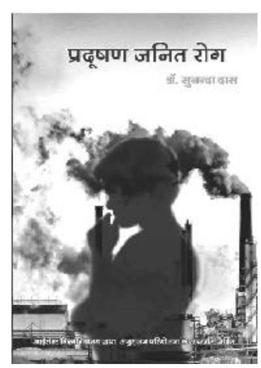
pramod.bhargava15@gmail.com



राम शरण दास 2 अप्रैल 1944 को मुजफ्फरनगर मे जन्में। मेरठ विश्वविद्यालय से एम.एस-सी एवं दिल्ली विश्वविद्यालय से बी.एड. और एम.एड. किया। सीबीएसई, एनसीईआरटी, एनआईओएस तथा इग्नू के लिये आपने विज्ञान पुस्तकों का लेखन किया। विज्ञान लेखन के अतिरिक्त आपने अनुवाद के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किये हैं। व्हिट्टेकर पुरस्कार, राजीव गांधी राष्ट्रीय ज्ञान-विज्ञान मौलिक लेखन पुरस्कार आदि से सम्मानित रामशरण दास ने कई विश्व प्रसिद्ध विज्ञान कथाओं तथा उपन्यासों का संक्षिप्तिकरण किया। उक्त पुस्तक का उद्देश्य उभरते युवा मस्तिष्कों को वैज्ञानिकों, विज्ञान-विधियों, वैज्ञानिक आविष्कारों औरउनके समाज पर प्रभावों आदि के विषय में और अधिक अध्ययन करने की प्रेरणा देना है जिससे वे वैज्ञानिक ज्ञान संपन्न समाज के निर्माण के लिए संकल्प लें।

•

एम.एस-सी, डीफिल और पी.एच-डी शिक्षित डॉ. सुनंदा दास का जन्म 13 जून 1959 को इलाहाबाद में हुआ। उन्हें एकेडमिक एक्सीलेंस अवार्ड, शताब्दी सम्मान : विज्ञान परिषद, श्रीमती उमाप्रसाद विज्ञान लेखन सम्मान से सम्मानित डॉ. सुनंदा दास की रचनायें वैज्ञानिक, साइंस रिपोर्टर, विज्ञान और अविष्कार आदि में प्रकाशित होती रही हैं। ग्रीन हाउस गैसें, शोधपत्र, रिव्यू आर्टिकल, बुक चेप्टर आदि कृतियां प्रकाशित हैं। आप अकार्बनिक रसायन विज्ञान, चौधरी महादेव प्रसाद महाविद्यालय में एसोसियेट प्रोफेसर हैं। प्रस्तुत पुस्तक में प्रदूषण से जन्म लेने वाले रोगों का विश्लेषण है। पूर्णतः प्रदूषण युक्त विश्व संभव नहीं है, पर यह प्रयास तो किया जा सकता है कि हम भौगोलिक सीमाओं की परवाह किए बगैर उसे न्यूनतम करें। प्रदूषण और प्रदूषणजनित रोग एक ज्वलंत समस्या ही नहीं बल्कि एक तरह का नासूर है जो साल दर साल हमारे द्वारा की गई गलतियों का परिणाम है। पुस्तक हमें अपनी प्राकृतिक संसाधनों का इस्तेमाल सोच समझकर करने और प्रदूषण रोकने या कम करने की दिशा में सकारात्मक प्रयास करने के लिए जागरूक करती है।



रासायनिक कीटनाशक और विकल्प



डॉ.मनीष मोहन गोरे



मनीष मोहन गोरे विज्ञान प्रसार दिल्ली में वैज्ञानिक के पद पर कार्यरत हैं। वे विज्ञान लेखन के क्षेत्र में विज्ञान कथा और लेख दोनों ही लिखते रहे हैं किन्तु इधर के दो–तीन वर्षों में उन्होंने देशभर के वरिष्ठ विज्ञान लेखकों की साक्षात्कार–शृंखला तैयार की है। विज्ञान लेखन, विज्ञान संचार और विज्ञान जिज्ञासाओं को ध्यान में रखकर उन्होंने जिन वैज्ञानिकों से बातचीत की वह काफी चर्चा में रहे। हमें खुशी है कि 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिये' में हम उन वार्ताओं को नियमित प्रकाशित कर सके हैं।

पिछले कुछ दशकों से रासायनिक कीटनाशकों का अंधाधुंध प्रयोग हमारी कृषि में होने लगा है। इसके असंतुलित प्रयोग से कीटनाशक रसायन न केवल हमारे पर्यावरण पर बुरा असर हुआ है बल्कि यह प्रकृति के जीवों और हम मनुष्यों के स्वास्थ्य के लिए भी खतरा बन गया है। कीटनाशकों का विषैला असर फसलों के साथ-साथ मिट्टी, हवा, पानी से होता हुआ हमारे भोजन में भी आ पहुंचा है। अब इससे बचने के लिए जैविक खेती और समेकित कीट प्रबंधन (आईपीएम) जैसे अनेक विकल्पों को अपनाने की बात शुरू हुई है। आइये जानते हैं कि क्या होते हैं ये कीटनाशक रसायन, जीवों पर ये कैसे काम करते हैं, पर्यावरण और जीवों को यह किस तरह हानि पहुँचाते हैं और इनके क्या विकल्प हो सकते हैं?

कृषि से जुड़ीं दुश्वारियाँ

कृषि से न केवल हमारी 130 करोड़ की आबादी को भोजन मिलता है बल्कि यह हमारे देश की अर्थव्यवस्था का आधार भी है। कृषि से आबादी के एक बड़े हिस्से को रोजगार भी मुहैया होता है। भूकंप, बाढ़, सूखा, आंधी, ओलावृष्टि जैसी प्राकृतिक आपदाएं किसान भाइयों की मेहनत पर पानी फेर देते हैं। इनसे फसलों को भारी नुकसान होता है। जलवायु परिवर्तन जैसी पर्यावरणीय समस्या ने कृषि क्षेत्र में भी नुकसान पहुँचाया है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि भारत की वर्तमान कृषि पैदावार में उम्मीद से अधिक वृद्धि दर्ज की गई है और इसके सहारे खाद्य सुरक्षा की स्थिति हासिल हुई है। मगर हम इस बात से मुँह नहीं फेर सकते कि हमारी हमारी कृषि मानसून और जलवायु पर अत्यधिक निर्भर करती है। साथ ही हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि हमारी कृषि को अनेक प्रकार के फसल पीड़कों या पेस्ट का आक्रमण झेलना पड़ता है। टिड्डे, ततैया, चींटियां, मक्खियां, तिलचट्टा, दीमक, सिल्वर फिश, पतिंगा जैसे कई प्रकार के कीट, खरगोश, छछूंदर, चूहे, उदबिलाव, फफूंद, जीवाणु और खर-पतवार फसल पीड़क या पेस्ट की श्रेणी में आते हैं। पेस्ट से फसलों की रक्षा करने के लिए प्राचीन काल से ईसा पूर्व 2000 साल से कीटनाशक इस्तेमाल के प्रमाण मिलते हैं। प्राचीन मेसोपोटामिया में लगभग 5 हजार साल पहले सल्फर डस्ट को कीटनाशक के रूप में इस्तेमाल किया जाता था। ऋग्वेद में भी कीटनाशक के इस्तेमाल की बात लिखी गई है।



आम तौर पर कीटनाशक रासायनिक पदार्थों से बनाये जाते हैं। लक्ष्य जीव के अनुसार इनके मुख्य प्रकार हैं, शाकनाशी, निमेटोडनाशक, दीमकनाशक, मोलस्कनाशक, कृंतकनाशक, जीवाणुनाशक, कवकनाशक और खर-पतवारनाशक। फसलों को नुकसान पहुँचाने वाले इन सभी फसल पीड़कनाशकों को सामान्य तौर पर कीटनाशक के रूप में जानते हैं। अधिकांश कीटनाशक पौधों की सुरक्षा से संबंधित उत्पाद के रूप में इस्तेमाल किये जाते हैं जो कि कीट, पतंगों, खर-पतवार, कवक जैसे अनेक फसल पीड़क से फसलों की रक्षा करते हैं।

बढ़ती निर्भरता : खतरे की घंटी

वर्तमान समय में इन पेस्ट से निपटने के लिए किसान भाई रासायनिक कीटनाशकों पर जरूरत से ज्यादा निर्भर हो गये हैं ये मूल रूप से रासायनिक पदार्थ होते हैं जो अपने लक्ष्य जीव को तो नष्ट करते ही हैं, साथ ही साथ फसल, मिट्टी, हवा, पानी को भी विषाक्त बनाते हैं। कीटनाशक रसायन फसलों के रास्ते इकोसिस्टम की खाद्य श्रृंखलाओं में पहुँचकर किसान भाइयों और आम लोगों के स्वास्थ्य को बड़ा नुकसान पहुँचाते हैं।

इन फसल पीड़कों या पेस्ट से निपटने के लिए आम तौर पर दो विधियां होती हैं पहली इन पेस्ट को मार देना, उन्मूलन कर देना और दूसरा है पेस्ट को बिना मारे या नुकसान पहुँचाए फसल से दूर हटाना। पेस्ट से निपटने के पहले तरीके में सामान्य तौर पर रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग किया जाता है। इसका इस्तेमाल हमारी प्रकृति के इकोसिस्टम और खाद्य श्रृंखला में एक प्रकार का संतुलन उत्पन्न कर देता है। जैसा कि हम जानते हैं कि पर्यावरण में हर एक जीव की निश्चित भूमिका होती है। सभी जीव एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। प्रकृति में जीवों की परस्पर निर्भरता को सह-अस्तित्व कहते हैं। इसलिए जीवों के साथ-साथ प्रकृति में मिट्टी, हवा, पानी, खनिज जैसे अजीवित तत्व भी अहम होते हैं। इसे समझने के लिए घास के मैदान में एक छोटी खाद्य श्रृंखला का उदाहरण लेते हैं। इस खाद्य श्रृंखला में पौधा, कीड़ा, मेढक, सांप और बाज मुख्य भागीदार होते हैं। सूर्य की रोशनी, जड़ों से पानी, कार्बन डाइआक्साइड और पत्तियों में मौजूद क्लोरोफिल की मदद से पौधा अपनी पत्तियों में कार्बनिक पदार्थ के रूप में भोजन का निर्माण करता है। इस भोजन को कीड़े खाते हैं फिर इस कीड़े को मेढक अपना आहार बनाता है। मेढक आगे चलकर सांप का आहार बनता है और सांप को अंत में बाज खा जाता है।

वर्तमान में प्राकृतिक खाद्य श्रृंखला में हमने व्यवधान पैदा कर दिया है। फसलों पर बैठने वाले कीड़ों को मारने के लिए हमने रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग किया और कीड़ों की आबादी को खतरे में डाल दिया। इसका क्या असर होगा? इसका अनुमान आप स्वयं लगा सकते हैं। मेढक को उसका भोजन मिलना बंद हो जाएगा। अगर लंबे समय तक यही स्थिति बनी रही तो मेढक की आबादी लुप्त हो जाएगी, जिसका असर सांप और बाज की आबादियों पर भी होगा। इसका आशय है कि प्रकृति में सभी जीव और पर्यावरण के तत्व एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। पर्यावरण के किसी एक तत्व के समाप्त होने से पूरी की पूरी खाद्य श्रृंखला बिगड़ सकती है। कीटनाशक हमारे पर्यावरण और जीव-जंतुओं सहित मानव अस्तित्व के लिए भी हानिकारक होते हैं। आम तौर पर कीटनाशक रासायनिक पदार्थों से बनाये जाते हैं। लक्ष्य जीव के अनुसार इनके मुख्य प्रकार हैं : शाकनाशी, निमेटोडनाशक, दीमकनाशक, मोलस्कनाशक, कृंतकनाशक, जीवाणुनाशक, कवकनाशक और खर-पतवारनाशक। फसलों को नुकसान पहुँचाने वाले इन सभी फसल पीड़कनाशकों को सामान्य तौर पर कीटनाशक के रूप में जानते हैं। अधिकांश कीटनाशक पौधों की सुरक्षा से संबंधित उत्पाद के रूप में इस्तेमाल किये जाते हैं जो कि कीट, पतंगों, खर-पतवार, कवक जैसे अनेक फसल पीड़क से फसलों की रक्षा करते हैं।

कीटनाशकों के दुष्प्रभाव

रासायनिक कीटनाशकों को सामान्य तौर पर नियोनिकोटिनायड, पाइरेथ्राइड, सल्फोनाइलुरिया, आर्गेनोफास्फेट, कार्बामेट और आर्गेनोक्लोरिन हाईड्रोकार्बन जैसे कुछ मुख्य रासायनिक समूहों में बांटा जा सकता है। नियोनिकोटिनायड कीटनाशक न्यूरो एक्टिव कीटनाशक की एक श्रेणी है और रासायनिक स्तर पर यह निकोटिन के समान होता है। इस श्रेणी में इमिडाक्लोप्राइड नामक कीटनाशक का इस्तेमाल पूरी दुनिया में बड़ी मात्रा में किया जाता है। 1990 के दशक में इस कीटनाशक से पर्यावरण को होने वाले नुकसान की वजह से इस पर निगरानी रखी जाने लगी। इसकी वजह से मधुमक्खी की बस्तियां उजड़ने लगीं और कीड़ों की आबादी में गिरावट आने से उन्हें खाने वाले पक्षियों के अस्तित्व पर संकट आ गया था। भारत में इस श्रेणी के कीटनाशकों का इस्तेमाल किया जाता है। आर्गेनोफास्फेट रसायन

लक्ष्य जीव के तंत्रिका तंत्र को नष्ट कर देता है। इस रसायन का इस्तेमाल अधिकतर कीटनाशक के रूप में किया जाता है। इनका असर कीड़ों के समान मनुष्यों पर भी पड़ता है। साल 2013 में बिहार के सारन जिले के एक प्राथमिक स्कूल में मिड-डे मिल खाकर 22 बच्चों की मौत हो गई थी। किसी कारणवश उस भोजन में आर्गेनोफास्फेट कीटनाशक मिला हुआ था जिसे उन बच्चों ने खाया था। यह रसायन आस्ट्रेलिया, कंबोडिया, चीन, इंडोनेशिया, श्रीलंका, थाइलैंड, विएतनाम और अमेरीका जैसे दुनिया के अनेक देशों में प्रतिबंधित है। एक अनुमान के अनुसार इस रसायन की वजह से पूरी दुनिया में हर साल लगभग दो लाख लोगों की मौत होती है।



कीटनाशक विक्रेता और किसान जो कीटनाशक रसायनों के सीधा संपर्क में आते हैं, इससे उनके स्वास्थ्य को देर-सबेर खतरा बना रहता है। कीटनाशकों के संपर्क से मानव स्वास्थ्य को अनेक प्रकार के जोखिम की संभावना होती है। इसमें आम तौर पर त्वचा और आँख में खुजली से लेकर तंत्रिका तंत्र, प्रजनन संबंधी समस्याओं और कैंसर तक का खतरा उत्पन्न हो सकता है। कीटनाशकों के प्रयोग और छिड़काव के दौरान मास्क और दस्ताने जैसे सुरक्षात्मक उपाय नहीं करने की वजह से हर साल भारत में हजारों किसानों की मौत हो जाती है।

आर्गेनोक्लोरीन कीटनाशक क्लोरीनेटेड हाइड्रोकार्बन होते हैं जो कृषि क्षेत्र में और मच्छरों के नियन्त्रण के लिए 1940 के दशक से प्रयोग किये जाते हैं। डीडीटी, मेथोजाइक्लोर, क्लोरडेन, टोक्साफिन, लिंडन और बेंजीन हेक्साक्लोराइड इस कीटनाशक के कुछ मुख्य उदाहरण हैं। पाइरेथ्रायड नामक कीटनाशक रसायन पक्षियों और मनुष्यों के लिए कम विषाक्त होता है। मगर यह मछलियों के लिए बेहद नुकसानदायक है। कीड़ों को मारने में इनकी छोटी मात्रा भी कारगर होती है। शाक यानी हर्ब का उन्मूलन करने के लिए सल्फोनाइलुरिया नामक रसायन का इस्तेमाल किया जाता है। इसलिए इसे शाकनाशी (हर्बिसाइड) रसायन कहते हैं। अमिडोसलफ्यूरान, एजिमसलफ्यूरान, क्लोरसलफ्यूरान, ट्रीफ्लूसलफ्यूरा, बेनसलफ्यूरान-मेथिल कुछ मुख्य शाकनाशी रसायन होते हैं। अब सवाल यह उठता है कि ये रासायनिक कीटनाशक पेस्ट पर किस तरह अपना असर डालते हैं। वैज्ञानिकों ने यह पाया है कि अधिकांश कीटनाशक लक्ष्य पेस्ट के तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करते हैं।

अब जंतुओं के तंत्रिका तंत्र को जान लें। सभी जंतुओं में चाहे वो कीड़े हों या मनुष्य, उनकी तंत्रिका कोशिकाएं उनके शरीर के किसी भी अंग में होने वाली उत्तेजना का अनुभव करने में मदद करती हैं। उदाहरण के लिए गर्म तवे को छूने से होने वाली उत्तेजना को उस प्रभावित अंग से तंत्रिका केंद्र यानी कि मस्तिष्क तक ले जाती हैं और फिर वापस मस्तिष्क से उस अंग तकय जिससे हम अपना हाथ गर्म तवे से दूर हटा लेते हैं। जब रासायनिक कीटनाशक प्रयोग किये जाते हैं तो उन रसायनों की वजह से उस प्रभावित अंग की तंत्रिका कोशिकाएं दिग्भ्रमित हो जाती हैं जिस कारण इसकी सूचना मस्तिष्क तक नहीं पहुँच पाती। इस तरह रसायन जीव के शरीर में फैल जाते हैं और उसके घातक असर से जीव की मृत्यु हो जाती है। मनुष्य और दूसरे स्तनधारी जन्तुओं पर इन रसायनिक कीटनाशकों का वही प्रभाव होता है जैसा कि कीट-पतंगों जैसे छोटे पेस्ट पर होता है। हालांकि छोटे जीवों पर कीटनाशक का प्रभाव अधिक होता है जबकि बड़े जीवों पर कम। एक सामान्य अनुमान के अनुसार पूरी दुनिया में किसान हर साल जितना पैसा कीटनाशकों पर खर्च करते हैं, उसका चार गुना फायदा उन्हें मिल जाता है। वहीं दूसरी तरफ कीटनाशकों का इस्तेमाल नहीं करने से फसलों की पैदावार कम हो जाती है। इसका सीधा कारण है कि पेस्ट फसलों में बीमारी फैलाते हैं।

वैसे देखा जाए तो दुनिया के विकसित देशों की तुलना में भारत में कीटनाशकों का प्रयोग कम होता है। हमारे यहाँ प्रति हेक्टेयर आधा किलो कीटनाशकों का इस्तेमाल किया जाता है। वहीं जापान, कोरिया और अमेरीका में इसका इस्तेमाल बहुत ज्यादा है। देखा जाए तो सीधे तौर पर रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग से फसलों की पैदावार में बढोतरी होती है लेकिन इसके लिए हमें दूसरी तरफ पर्यावरण और अपने स्वास्थ्य की भारी कीमत चुकानी पड़ती है।

कीटनाशक विक्रेता और किसान जो कीटनाशक रसायनों के सीधा संपर्क में आते हैं, इससे उनके स्वास्थ्य को देर-सबेर खतरा बना रहता है। कीटनाशकों के संपर्क से मानव स्वास्थ्य को अनेक प्रकार के जोखिम की संभावना होती है। इसमें आम तौर पर त्वचा और आँख में खुजली से लेकर तंत्रिका तंत्र, प्रजनन संबंधी समस्याओं और कैंसर तक का खतरा उत्पन्न हो सकता है। कीटनाशकों के प्रयोग और छिड़काव के दौरान मास्क और दस्ताने जैसे सुरक्षात्मक उपाय नहीं करने की वजह से हर साल भारत में हजारों किसानों की मौत हो जाती है। किसान भाइयों के घर की महिलाएं भी अक्सर खेती में अपने पुरुष साथियों का हाथ बंटाती हैं इसलिए कीटनाशक रसायनों के घोल तैयार करने के दौरान महिलाओं को इसका जोखिम झेलना पड़ता है। बच्चों के स्वास्थ्य पर भी इन कीटनाशकों का बुरा असर देखने को



जैविक नियंत्रण एक महत्वपूर्ण उपाय है। इसमें प्राकृतिक शिकारी जीवों का सहारा लेकर कीट-पतंगों और दूसरे फसल के पेस्ट की आबादी को नियंत्रित किया जाता है। खेतों में यह तरीका अपनाने के लिए किसी कीड़े से निपटने के लिए उसके किसी खास प्राकृतिक शिकारी जीव का प्रवेश उस इलाके में कराया जाता है।

मिलता है। बहुत से किसान कीटनाशक के खाली डिब्बे या कंटेनर को घर में पानी रखने या किसी दूसरे काम के लिए उपयोग में लाते हैं जिसकी वजह से रसायन का विषाक्त प्रभाव उस पानी में आ जाता है और इसे पीने से स्वास्थ्य पर बुरा असर होता है। घर पर गलती से या अनजाने में अगर कीटनाशक खुले में रखा गया हो तो वह भी बच्चों के लिए खतरे का कारण बनता है। अधिक समय तक कीटनाशकों के संपर्क में रहने से मनुष्यों में सिर दर्द, मांसपेशियों में फड़कन, सांस लेने या भोजन करने में तकलीफ, चक्कर और पसीना आने जैसी स्वास्थ्य समस्याएं प्रकट होती हैं।

कीटनाशकों का हमारे पर्यावरण पर गंभीर और व्यापक प्रभाव पड़ता है। अधिकांश तौर पर कीटनाशक रसायनों को तरल के रूप में एक विशेष उपकरण के द्वारा खेतों में इसका छिड़काव किया जाता है। एक अनुमान के अनुसार इन रसायन का छिड़काव के दौरान महज तीन से चार प्रतिशत लक्ष्य पेस्ट तक पहुँचता है और बाकी 96-97 प्रतिशत हिस्सा हवा, मिट्टी, पानी और फसलों में चला जाता है। जब खेत-बगीचों में कीटनाशकों का छिड़काव किया जाता है तो ये हवा के साथ उड़कर आस-पास के इलाकों में भी चले जाते हैं। बारिश के पानी में भी कीटनाशक मिल जाते हैं और बहकर नजदीक की जल धाराओं में पहुँचते हैं या मिट्टी में रिसकर भूमिगत जल में जा मिलते हैं। कुछ कीटनाशक अनेक वर्षों तक पर्यावरण में बने रहते हैं और इनका संचार एक से दूसरे जीव में होता रहता है। पौधे पर जब कीटनाशक का छिड़काव किया जाता है तो उसमें यह रसायन सोख लिया जाता है और जब कोई कीड़ा जैसे कि टिड्डा इस पौधे से अपना भोजन लेता है तो पौधे से रसायन उस कीड़े के शरीर में प्रवेश कर जाता है। अब उस कीड़े को उससे बड़ा जंतु जैसे कि मेढ़क जब खाता है तो वह रसायन उसके शरीर में और फिर मेढ़क को आहार बनाने वाले जंतु सांप तक पहुँच जाता है। इस तरह कीटनाशक पर्यावरण में मौजूद प्राकृतिक खाद्य श्रृंखलाओं पर कितना घातक असर छोड़ता है, इसका अंदाजा आसानी से लगाया जा सकता है। अनेक फसल पीड़क या कीट-पतंगे कीटनाशकों से मुकाबले के लिए अपनी क्षमता में इजाफा कर लेते हैं जिस कारण नये और अधिक तीव्र कीटनाशक बनाये जाते हैं। अब स्वाभाविक है कि ये नये कीटनाशक जीवों और पर्यावरण को पहले से ज्यादा नुकसान पहुँचाते हैं। ध्यान देने पर हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि कीटनाशकों के इस्तेमाल से फसल पैदावार को होने वाले फायदे की तुलना में पर्यावरण और मनुष्यों को होने वाला नुकसान कहीं ज्यादा होता है।

रासायनिक कीटनाशक के विकल्प

कीटनाशकों के बेतहाशा इस्तेमाल को धीरे-धीरे कम करने की दिशा में आज हमारे पास अनेक बेहतर और इकोफ्रेंडली विकल्प मौजूद हैं। इनमें जैविक नियंत्रण एक महत्वपूर्ण उपाय है। इसमें प्राकृतिक शिकारी जीवों का सहारा लेकर कीट-पतंगों और दूसरे फसल के पेस्ट की आबादी को नियंत्रित किया जाता है। खेतों में यह तरीका अपनाने के लिए किसी कीड़े से निपटने के लिए उसके किसी खास प्राकृतिक शिकारी जीव का प्रवेश उस इलाके में कराया जाता है।

रासायनिक कीटनाशकों का दूसरा महत्वपूर्ण विकल्प है समेकित कीट प्रबंधन या इंटिग्रेटेड पेस्ट मैनेजमेंट (आईपीएम)। यह ऐसा उपाय है जिसमें किटों का जैविक नियंत्रण, रासायनिक कीटनाशक और परम्परागत कीट प्रबंधन जैसी सभी नियंत्रण विधियों को संतुलित ढंग से अपनाया जाता है। आईपीएम का उद्देश्य होता है कि पेस्ट की आबादी को इस प्रकार नियंत्रित किया जाए कि पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य को खतरा पैदा न हो। रासायनिक कीटनाशकों का एक और अहम विकल्प है जैविक खेती। इसमें गोबर की खाद, हरी खाद का उपयोग किया जाता है। इससे न केवल भूमि की उर्वरा शक्ति बनी रहती है-अच्छी पैदावार भी होती है बल्कि पर्यावरण भी सुरक्षित रहता है। यह सच है कि आजकल फसल पीड़क जीवों यानी कि पेस्ट से फसल को बचाने के लिए खेती में रासायनिक कीटनाशकों का बेतहाशा इस्तेमाल किया जाता है। मगर दूसरी ओर इन रसायनों का हमारे पर्यावरण और स्वास्थ्य पर बुरा असर होता है। इन कीटनाशकों के अनेक बेहतर विकल्प आज मौजूद हैं जिसे किसान भाई अपनाकर अच्छी उपज भी हासिल कर सकते हैं, भूमि की उर्वरता भी बनाये रख सकते हैं और इससे पर्यावरण व मानव स्वास्थ्य भी सुरक्षित बना रहता है।

mmgore1981@gmail.com

मोबाइल गेम एडिक्शन



विजन कुमार पाण्डेय



विजन कुमार पाण्डेय लोकप्रिय विज्ञान लेखक हैं और शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े हैं। उन्होंने विगत तीन दशकों में तीन सौ से अधिक लेख लिखे हैं। 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' में वे नियमित रूप से प्रकाशित होते रहे हैं। देश के प्रतिष्ठित विज्ञान पत्रिकाओं में आपकी रचनाओं की कई-कई पाठक हैं जो आपके काम को रेखांकित करते रहते हैं।

दुनिया में मोबाइल और वीडियो गेम में लोगों की बढ़ती दिलचस्पी को देखते हुए, विश्व स्वास्थ्य संगठन ने गेमिंग एडिक्शन को एक तरह का डिसऑर्डर बताते हुए इसे दिमाग़ी बीमारी की श्रेणी में रखा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के इंटरनेशनल क्लासिफ़िकेशन ऑफ़ डिज़ीज़ ने 27 साल बाद अपना ये मैन्युअल इस साल अपडेट किया है। ''पढ़ोगे लिखोगे बनोगे नवाब, खेलोगे कूदोगे होगे खराब''- यह कहावत आज निराधार हो चुकी है। बच्चों के मानसिक विकास के साथ साथ शारीरिक विकास भी जरूरी है। व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन तन और मन रूपी गाड़ी से चलता है। व्यायाम और खेल शारीरिक विकास करते हैं जबकि चिन्तन-मनन से व्यक्ति का मानसिक विकास होता है। खेल के भी अनेक रूप हैं- कुछ खेल बच्चों के लिए, कुछ बड़ों के लिए तो कुछ वृद्धों के लिए होते हैं। सभी खेलों के लिए बड़े मैदानों की आवश्यकता नहीं होती। जैसे- कैरम बोर्ड, शतरंज, साँप-सीढ़ी, लुडो, ताश आदि। ये सब इंडोर गेम हैं। खेल के द्वारा सभी तरोताजा रहते हैं। स्वस्थ्य रहने का यह सबसे आसान तरीका है। लेकिन इस पर भी अब शंका के बादल मंडरा रहे हैं। ऐसा देखने में आ रहा है कि जो बच्चे पढ़ाकू हैं खेलते नहीं, वे चिड़चिड़े आलसी और डरपोक हो जाते हैं, यहाँ तक कि अपनी रक्षा करने में भी वे असमर्थ हो जाते हैं। लेकिन जो पढ़ने के साथ-साथ खेलों में भी भाग लेते हैं वे चुस्त-दुरुस्त रहते हैं। उनकी हड्डियाँ मजबूत और चेहरा कान्तिमय हो जाता है। खेलना जरूरी है लेकिन इसकी लत अच्छी नहीं।

समय काटने वाले गेम

ऐसा नहीं कि गेम खेलने की लत केवल बच्चों में होती है। आजकल आपको बहुत से दफ़्तरों में भी एंग्री बर्ड, टेम्पल रन, कैंडी क्रश, कॉन्ट्रा जैसे मोबाइल गेम के कई दीवाने मिल जाएंगे। अक्सर समय बिताने के लिए लोग इसे खेलना शुरू करते हैं। पर ये कब आदत में बदल जाता है और ज़िंदगी का अहम हिस्सा बन जाता है, इसका अंदाज़ा लोगों को नहीं होता। गेम खेलने की अलग तरह की एक लत होती है। ये गेम डिजीटल गेम भी हो सकते हैं या फिर वीडियो गेम भी। डब्लूएचओ के मुताबिक इस बीमारी के शिकार लोग निजी जीवन में आपसी रिश्तों से ज़्यादा अहमियत गेम खेलने को देते हैं। जिसके कारण उनके सारे काम पेंडिंग में रहते हैं। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि वह व्यक्ति आलसी है। इसी तरह अगर किसी भी आदमी को इसकी लत है, तो उसे बीमार नहीं कहा जा सकता।



विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक उस व्यक्ति के साल भर के गेमिंग पैटर्न को देखने की ज़रूरत होती है। अगर उसकी गेम खेलने की लत से उसके निजी जीवन में, पारिवारिक या समाजिक जीवन में, पढ़ाई पर, नौकरी पर ज़्यादा बुरा असर पड़ता दिखता है तभी उसे 'गेमिंग एडिक्ट' यानी बीमारी का शिकार माना जा सकता है। डब्ल्यूएचओ की तरफ़ से जारी रिपोर्ट के मुताबिक मोबाइल या फिर वीडियो गेम खेलने वाले बहुत कम लोगों में ये बीमारी का रूप धारण करती है। लेकिन इस बात का ख़याल रखना बेहद ज़रूरी है कि आप दिन में कितने धंटे मोबाइल पर गेम खेलते हुए बिताते हैं। अगर आप अपने जीवन के बाकी काम निपटाते हुए मोबाइल पर गेम खेलने का वक्त निकाल पाते हैं तो उन लोगों के लिए ये बीमारी नहीं है।

लत यूं ही नहीं लगती

किसी भी चीज़ की लत यूं ही नहीं होती है, बल्कि हम खुद उसे बढ़ावा देते हैं। ऐसे कई उदाहरण हैं जैसे बनारस के दो भाइयों को ऑनलाइन गेम खेलने की इतनी अधिक लत हो गई थी कि वे बाथरूम जाने तक के लिए समय नहीं निकाल पाते थे और किसी के टोकने पर खीझ उठते थे। दरअसल शारीरिक व्यायाम की आदत न होने के कारण ही लोग इन डिजिटल गेम्स की तरफ आकर्षित होते जा रहे हैं। वे दिन भर घरों में घुसे रह कर सिर्फ विडियो गेम्स खेलते रहते हैं, जिसके कारण पढ़ाई से भी उनका मन भटकता है। इसी तरह एक मल्टीनेशनल फर्म में मैनेजर के पद पर कार्यरत एक व्यक्ति को अपनी नौकरी सिर्फ इस वजह से गंवानी पड़ी कि वह दिन भर अपने टैबलेट में पज़ल गेम्स खेलने में व्यस्त रहता था, जिसका नकारात्मक प्रभाव उसके काम पर भी पडने़ लगा था। ऐसे कई केस हैं, जिनसे गेमिंग एडिक्शन को साफ तौर पर समझा जा सकता है। कभी छात्र क्लास के दौरान गेम खेलते पकड़े जाते हैं तो कभी ऑफिस से थका हुआ व्यक्ति गेम्स के कारण घर पर भी फोन में ही व्यस्त रहता है। ऐसे लोग सोते-जागते खुद को गेमिंग वर्ल्ड का हिस्सा मानते हैं।

मगर बुरी है लत

जब आप किसी चीज की ज़रूरत से ज़्यादा इस्तेमाल करने लगे और जब उसके बिना ज़िंदगी में कुछ अधूरा सा लगने लगे तो समझिए आप एडिक्शन के शिकार हो गए हैं। चाय-कॉफी के एडिक्शन की तरह ही अब लोगों को गेम्स का एडिक्शन भी होने लगा है। सुबह उठने से लेकर रात में सोने तक वे फोन या लैपटॉप की कैद में रहने लगे हैं। कुछ काम करते वक्त ज़रा से ब्रेक में भी कई लोग गेम्स खेलते हुए ही नज़र आते हैं। ऐसे लोग कई बार अपने गेम्स की दुनिया में इतना खो जाते हैं कि बस व ट्रेन में अपना स्टॉप या अन्य महत्वपूर्ण काम भी भूल जाते हैं। अगर इस स्थिति को समय पर नियंत्रित न किया गया तो यह बेहद तनावपूर्ण हो सकती है। हाल के कुछ दिनों में एक गेम 'पोकेमॉन गो' ने खूब चर्चा बटोरा। देश-विदेश, हर जगह व हर किसी की ज़ुबान पर यह ऑनलाइन गेम चढ़ा रहा। इसकी वजह से न सिर्फ बच्चे, बल्कि बड़े भी काफी प्रभावित हुए। कई घायल हुए व कई पागल हो गये पर इसका क्रेज़ ज़रा भी कम नहीं हुआ। इस गेम के अलावा और भी कई गेम्स व एप्स हैं जिनका जादू समय-समय पर लोगों के सिर पर चढ़कर बोलता रहता है।

चाय-कॉफी के एडिक्शन की तरह ही अब लोगों को गेम्स का एडिक्शन भी होने लगा है। सुबह उठने से लेकर रात में सोने तक वे फोन या लैपटॉप की कैद में रहने लगे हैं। कुछ काम करते वक्त ज़रा से ब्रेक में भी कई लोग गेम्स खेलते हुए ही नज़र आते हैं। ऐसे लोग कई बार अपने गेम्स की दुनिया में इतना खो जाते हैं कि बस व ट्रेन में अपना स्टॉप या अन्य महत्वपूर्ण काम भी भूल जाते हैं। अगर इस स्थिति को समय पर नियंत्रित न किया गया तो यह बेहद तनावपूर्ण हो सकती है।



गेम खेलना बिमारी नहीं

अति किसी भी चीज़ की एक सीमा के बाद बुरी हो जाती है। तकनीक के विस्तार ने हर काम को जितना आसान बनाया है, उतना ही लोगों को आरामपरस्त भी। उसी तरह गेमिंग की लत व्यक्ति को शारीरिक व मानसिक तौर पर बीमार कर रही है, यह सोचना पूर्णतया सही नहीं है। डब्ल्यूएचओ की तरफ़ से जारी रिपोर्ट के मुताबिक मोबाइल या फिर

वीडियो गेम खेलने वाले बहुत कम लोगों में ये बीमारी का रूप धारण करती है। लेकिन इस बात का ख़याल रखना बेहद ज़रूरी है कि आप दिन में कितने घंटे मोबाइल पर गेम खेलते हुए बिताते हैं। अगर आप अपने जीवन के बाकी काम निपटाते हुए मोबाइल पर गेम खेलने का वक्त निकाल पाते हैं तो उन लोगों के लिए ये बीमारी नहीं है।

अब आप पूछेंगे कि कितने घंटे गेम खेलने वाला बीमार होता है? इस सवाल के जवाब में डॉक्टर बताते हैं कि ऐसा कोई फ़ॉर्मूला नहीं है कि इतने घंटे खेलने पर आप बीमार हो जाएगें। दिन में चार घंटे गेम खेलने वाला भी बीमार हो सकता है और दिन में बारह घंटे गेम पर काम करने वाला ठीक हो सकता है। कोई बच्चा दिन में चार घंटे ही गेमिंग करके बीमार हो सकता है। यह उसके मानसिक संतुलन पर निर्भर करता है। डॉक्टर बताते हैं कि चौबीस घंटे में चार घंटे गेम पर बिताना ज़्यादा नहीं है। लेकिन ऐसे बच्चे बीमार इसलिए हो जाते हैं क्योंकि वह सात घंटे स्कूल में बिताता है, फिर ट्यूशन जाता है। वापस आने के बाद वह इतना थक जाता है कि उसे न तो अपने माता-पिता से बात करने में मन लगता और न पढ़ाई में। डॉक्टरों का कहना है कि अगर एक आदमी जो खुद गेम बनाता है या उसकी टेस्टिंग करता है और दिन में बारह घंटे गेम खेलता है, वो बीमार नहीं कहलाएगा। ऐसा इसलिए क्योंकि उसका ये पेशा है और उसका खुद पर नियंत्रण है।



नींद उड़ा लेगा गेम

जो भी किसी गेम की लत का शिकार होगा, वह किसी दूसरे काम में मन नहीं लगा पाएगा। उसकी नींद उड़ जाएगी। कोई ज़रूरी काम करते समय भी उसका ध्यान सिर्फ और सिर्फ अपने पसंदीदा गेम की दुनिया में ही लगा रहेगा, जिसका गलत असर उसके अन्य कामों पर भी पड़ता है। लगातार गेम खेलते रहने के कारण एक समय के बाद लोगों को नींद से जुड़ी कई तरह की समस्याएं होने लगती हैं। कभी नींद देर से आती है तो कभी वे रात को उठ कर खेलने लग जाते हैं। उनके लिए फोन पास में रख कर सोना भी एक मुसीबत है, अगर पानी पीने के लिए भी उनकी आँख खुलेगी तो वे उस गेम में व्यस्त हो जाएंगे, जिसके कारण उनकी नींद हराम हो जाती है।

जो भी किसी गेम की लत का शिकार होगा, वह किसी दूसरे काम में मन नहीं लगा पाएगा। उसकी नींद उड़ जाएगी। कोई ज़रूरी काम करते समय भी उसका ध्यान सिर्फ और सिर्फ अपने पसंदीदा गेम की दुनिया में ही लगा रहेगा, जिसका गलत असर उसके अन्य कामों पर भी पड़ता है। लगातार गेम खेलते रहने के कारण एक समय के बाद लोग को नींद से जुड़ी की तरह की समस्याएं होने लगती हैं। कभी नींद देर से आती है तो कभी वे रात को उठ कर खेलने लग जाते हैं। उनके लिए फोन पास में रख कर सोना भी एक मुसीबत है।

समाज से दूर ले जाती टेक्नॉलॉजी

लगातार टेक्नॉलॉजी के संपर्क में रहने से व्यक्ति अपने आसपास के लोगों से दूर होने लगता है। पार्टी या किसी और सामाजिक कार्यक्रम में होने पर भी वह अपने फोन पर ही आंखें गड़ाए रहता है। इससे उसके वहाँ होने या न होने का कोई खास मतलब नहीं रहता है। कुछ नहीं तो कई लोग फोटो एडिटिंग एप्स व फिल्टर्स की सहायता से सेल्फी लेते हुए नज़र आते रहते हैं। यह भी एडिक्शन की श्रेणी में ही आता है।

चिड़चिड़ा बना देता है गेम

गेमिंग एडिक्शन के कारण ज़्यादातर लोग, खासकर बच्चे बहुत चिड़चिड़े हो जाते हैं। उनके हाथ से ज़रा देर के लिए भी फोन ले लेने पर वे विचलित होने लगते हैं। कई बार खाना-पीना तक छोड़ देते हैं और इन सबके बीच उनकी पढ़ाई तो डिस्टर्ब होती ही है, मानसिक संतुलन भी बिगड़ने लगता है।



बचाव है अहम

इस तरह के एडिक्शन से बचना बहुत ज़रूरी होता है, वर्ना उसका असर आपकी निजी ज़िंदगी पर भी पड़ सकता है। लगातार काम या रिश्तों को अनदेखा करना किसी भी तरह से हितकर नहीं है। इससे बचने के उपाय इस तरह हैं :



लड़कियों और महिलाओ में भी एडिक्शन की संख्या बढ़ती जा रही है। इनमें भी कभी थेरेपी से काम चल जाता है तो कभी दवाइयों से और कभी दोनों तरह के इलाज साथ में देने पड़ते हैं। आमतौर पर थेरेपी के लिए मनोवैज्ञिक के पास जाना पड़ता है और दवाइयों से इलाज के लिए मनोचिकित्सक के पास। डब्ल्यूएचओ के आकंड़ों के मुताबिक इस बीमारी के शिकार दस में से एक मरीज़ को अस्पताल में रह कर इलाज कराने की ज़रूरत पड़ सकती है। आम तौर पर छः से आठ हफ्ते में ये गेलमग एडिक्शन की लत छूट जाती है। दरअसल गेलमग की आदत न पड़ने देना ही इससे बचने का सटीक उपाय है।



●लोगों से जितना अधिक हो सके, मेलजोल बढ़ाएं। इसके लिए विभिन्न अवसरों पर पार्टी आदि का आयोजन करते रहें। अपने परिवार व दोस्तों के लिए समय निकालें। अपने कार्यों के लिए समय-सीमा निर्धारित कर उसका गंभीरता से पालन करें।

●एकाग्रता बढ़ाने के लिए ज़रूरी व दिमागी कार्यों के बीच कुछ समय का ब्रेक लेते रहें। हो सके तो इन ब्रेक्स में फोन व लैपटॉप का कम से कम इस्तेमाल करें। बच्चों को मोबाइल, लैपटॉप व इंटरनेट का ज़्यादा इस्तेमाल न करने दें और उन पर नज़र भी रखे रहें। अगर तमाम कोशिशों के बावजूद इन डिजिटल गेम्स से दूरी न बन पा रही हो तो किसी मनोवैज्ञानिक सलाहकार की मदद लेने में हिचकिचाएं नहीं।

इनसे बनाये दूरी

हर गेम एडिक्टिव हो, यह ज़रूरी नहीं होता है। कुछ सर्वे से यह बात सामने आई है कि पज़ल, क्विज़, फोटो एडिटिंग एप्स, डेटिंग एप्स, चैटिंग एप्स, शॉपिंग एप्स व मल्टीप्लेयर गेम्स बेहद एडिक्टिव होते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के मुताबिक, भारत को गंभीर मानसिक स्वास्थ्य संकट का सामना करना पड़ रहा है, क्योंकि देश में इस समय अनुमानतः 5.6 करोड़ लोग अवसाद से पीड़ित हैं, जबकि 3.8 करोड़ लोग चिंता के विकारों में फंसे हैं। हालांकि, जो चीज इस स्थिति को और अधिक बिगाड़ रही है, वह है समाज में इन रोगों के प्रति नकारात्मक और अधकचरी सोच।

लाइलाज नहीं है ये बीमारी

ये एक ऐसी बीमारी है जिसमें मनोवैज्ञानिक और मनोचिकित्सक दोनों की मदद लेनी पड़ती है। कई जानकार मानते हैं कि दोनों एक समय पर इलाज करें तो मरीज़ में फ़र्क जल्दी देखने को मिलता है। ऐसे कई मामले में साइको थेरेपी ही कारगर होती है, कई मामले में कॉग्नीटिव थेरेपी का इस्तेमाल किया जाता है। बच्चों में प्ले थेरेपी से काम चल सकता है। ये सब इस बात पर निर्भर करता है कि मरीज़ में एडिक्शन किस स्तर का है। इन दिनों तीन तरह के एडिक्शन ज़्यादा प्रचलित हैं - गेमिंग, इंटरनेट और गैम्बलिंग। आजकल लड़कियों और महिलाओं में भी एडिक्शन की संख्या बढ़ती जा रही है। इनमें भी कभी थेरेपी से काम चल जाता है तो कभी दवाइयों से और कभी दोनों तरह के इलाज साथ में देने पड़ते हैं। आमतौर पर थेरेपी के लिए मनोवैज्ञिक के पास जाना पड़ता है और दवाइयों से इलाज के लिए मनोचिकित्सक के पास। डब्ल्यूएचओ के आकंड़ो के मुताबिक इस बीमारी के शिकार दस में से एक मरीज़ को अस्पताल में रह कर इलाज कराने की ज़रूरत पड़ सकती है। आम तौर पर छः से आठ हफ्तों में ये गेमिंग एडिक्शन की लत छूट जाती है। दरअसल गेमिंग की आदत न पड़ने देना ही इससे बचने का सटीक उपाय है। गेमिंग एडिक्शन के बाद इलाज कराना ज़्यादा असरदार उपाय नहीं है।

vijankumarpandey@gmail.com

एक दुर्लभ रोग

न्यूरो एंडोक्राइन ट्यूमर



डॉ. विनीता सिंघल



डॉ.विनीता सिंघल ने जीवविज्ञान में डी-लिट और विज्ञान लोकप्रियकरण में एम.फिल किया है। वे तीस वर्षों तक विज्ञान प्रगति, साइंस रिपोर्टर जैसी विज्ञान पत्रिकाओं की सह-संपादक रहीं। सात सौ से अधिक मूल लेख एवं चालीस से अधिक किताबें लिखीं तथा बीस से अधिक पुस्तकों का संपादन एवं अनुवाद किया। आप राष्ट्रीय विज्ञान संचार एवं सूचना स्रोत संस्थान नई दिल्ली से सह-संपादक के पद से सेवानिवृत्त हुईं। आप दिल्ली में रहती हैं।

पिछले कुछ समय से बॉलीवुड स्टार इरफान खान की 'रेयर' बीमारी को लेकर तरह-तरह की अफवाहें फैल रही थीं। इन सब अफवाहों पर लगाम लगाते हुए स्वयं इरफान खान ने अपनी बीमारी का खुलासा कर दिया है कि वे न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर से पीड़ित हैं। अब ये सवाल उठ रहे हैं कि ये बीमारी होती क्या है, ये कैसे होती है और ये कितनी खतरनाक है। मोटे तौर पर इस तरह का ट्यूमर शरीर के उन हिस्सों में जन्म लेता है जो हार्मोन पैदा करते हैं जैसे कि एंडोक्राइन या अंतःस्रावी ग्रंथियां। शरीर के कुछ भाग जैसे कि फेफड़े, पेट और आंतों में न्यूरोएंडोक्राइन कोशिकाएं मौजूद होती हैं जो रक्त संचार सही करने और खाने को पचाने का काम करती हैं। यह ट्यूमर इन्हीं कोशिकाओं में बनता है।

एंडोक्राइन या अंतःस्रावी तंत्र

हमारे शरीर का अंतःस्रावी तंत्र ऐसी कोशिकाओं का बना होता है जो हार्मोन निस्स्रवित करती हैं। हार्मोन ऐसे रसायनिक पदार्थ होते हैं जो रक्त प्रवाह के साथ शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाए जाते हैं जिनका शरीर के विभिन्न अंगों, कोशिकाओं की क्रियाओं पर विशिष्ट प्रभाव होता है।

एंडोक्राइन या न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर

कोई ट्यूमर तब बनता है जब स्वस्थ कोशिकाओं में परिवर्तन होना शुरू होता है और वे बेहिसाब बढ़ना और एक पिंड का आकार लेना शुरू कर देती हैं। यह ट्यूमर कैंसरकारी या अकैंसरकारी हो सकता है। कैंसरकारी ट्यूमर असाध्य होता है अर्थात अगर जल्दी ही इसका निदान और उपचार न हो तो यह बढ़कर शरीर के अन्य भागों में फैल सकता है। जबकि अकैंसरकारी ट्यूमर को बिना किसी हानि के सर्जरी द्वारा निकाला जा सकता है।

एंडोक्राइन ट्यूमर (NET) एक ऐसा पिंड होता है जो शरीर के ऐसे भागों में बनता है जो हार्मोन का उत्पादन करते हैं। क्योंकि एंडोक्राइन ट्यूमर उन कोशिकाओं में बनता है जो हार्मोन बनाती हैं, इसलिए कोशिकाओं के साथ साथ ट्यूमर भी हार्मोन का उत्पादन कर सकता है। इससे गंभीर बीमारी हो सकती है।

न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर शरीर के न्यूरोएंडोक्राइन तंत्र की हार्मोन बनाने वाली कोशिकाओं में



बनता है, जो हार्मोन उत्पादक एंडोक्राइन कोशिकाओं और तंत्रिका कोशिकाओं का संयोजन होती हैं। आमतौर से इसकी वृद्धि बहुत धीमी गति से होती है। आरम्भिक अवस्था में इसके कोई लक्षण भी दिखायी नहीं देते और जब इसका पता चलता है तो यह शरीर के कई अंगों में फैल चुका होता है।

क्योंकि न्यूरोएंडोक्राइन कोशिकाएं पूरे शरीर के विभिन्न अंगों जैसे कि फेफड़ों, अमाशय एवं आंतों सहित गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल ट्रैक्ट में पायी जाती हैं। न्यूरोएंडोक्राइन कोशिकाएं कुछ विशिष्ट काम करती हैं जैसे कि फेफड़ों से होकर गुजरने वाले वायु एवं रक्त के प्रवाह को नियंत्रित करना और गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल ट्रैक्ट से आहार का तेजी से गुजरना आदि। न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर कई प्रकार के हो सकते हैं, यह इस पर निर्भर करता है कि वह शरीर के किस भाग में विकसित हुआ है। सामान्यतया न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर आहार नली या अग्नाशय में विकसित होता है। इस ट्यूमर को सामूहिक रूप से गैस्ट्रोएंटीरोपैक्रिएटिक न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर कहते हैं।

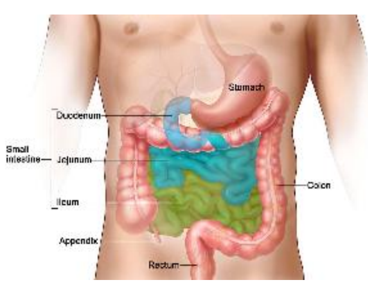
आहारनली का न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर : यह सबसे अधिक पाया जाने वाला न्यूरोएंडो क्राइन ट्यूमर है। इसे कार्सिनॉयड भी कहते हैं। गैस्ट्रोइंटेस्टाइनलन्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर, छोटी एवं बड़ी आंत सहित आहार नली के किसी भी भाग में हो सकते हैं। इसके लक्षण होते हैंः उदर या मलाशय में बेचैनी या दर्द, मचली और वमन, डायरिया, मलाशय से रक्तस्राव या मल में रक्त का आना, रक्त अल्पता और उसके कारण होने वाली थकान, सीने में जलन या अपाचन, अमाशय में अल्सर – इनके कारण सीने में जलन, अपाचन और सीने एवं उदर में दर्द, भार में कमी और आंत में अवरोध – इसके कारण उदर में दर्द और कब्ज।

यह सबसे अधिक पाया जाने वाला न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर है। इसे कार्सिनॉयड भी कहते हैं। गैस्ट्रोइंटेस्टाइनलन्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर, छोटी एवं बड़ी आंत सहित आहार नली के किसी भी भाग में हो सकते हैं। इसके लक्षण होते हैंः उदर या मलाशय में बेचैनी या दर्द, मचली और वमन, डायरिया, मलाशय से रक्तस्राव या मल में रक्त का आना, रक्त अल्पता और उसके कारण होने वाली थकान, सीने में जलन या अपाचन, अमाशय में अल्सर – इनके कारण सीने में जलन, अपाचन और सीने एवं उदर में दर्द, भार में कमी और आंत में अवरोध – इसके कारण उदर में दर्द और कब्ज।

अग्नाशय का न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमरः यह अग्नाशय में विकसित होता है। ये अत्यंत दुर्लभ प्रकार के ट्यूमर हैं। इसके विभिन्न प्रारूप होते हैंः

- इंसुलिनोमस– जो इंसुलिन बनाते हैं।
- गैस्ट्रिनोमस– जो गैस्ट्रिन (भोजन को पचाने में सहायक हार्मोन) बनाते हैं।
- ग्लुकागोनोमस– यह ग्लुकागॉन; रक्त शर्करा के स्तर को बढ़ाने में सहायक हार्मोन बनाते हैं।
- वाइपोमस– यह पाचन तथा अन्य शारीरिक प्रक्रियाओं में सहायक वासोएक्टिव इंटेस्टाइनल पेप्टाइड बनाते हैं।
- सोमैटोस्टेटाइनोमा– जो पाचन में सहायक हार्मोन सोमैटोस्टेटिन बनाते हैं।

इनमें से कुछ ट्यूमर अग्नाशय के बाहर विकसित होते हैं। जैसे कि गैस्ट्रिनोमस को अंडाशय, गुर्दे, अमाशय और यकृत में भी विकसित होते देखा गया है। पैक्रिएटिक न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर के प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैंः रक्त में ग्लूकोज का उच्च या निम्न उच्च स्तर, अतिसार, भूख न लगना या भार में कमी होना, कफ बनना, शरीर के किस्से भाग में गांठ बनना, मूत्र या मल त्याग की आदतों में बदलाव आना, बहुत अधिक भार बढ़ना या घटना, पीलिया जिसमें त्वचा पीली और आंखें सफेद हों, अचानक रक्तस्राव या स्राव होना, लगातार ज्वर होना या रात में पसीना आना, सिरदर्द होना, उत्तेजना बढ़ना, गैस्ट्रिक अल्सर होना, त्वचा पर चकत्ते पड़ना आदि। कुछ लोगों में बीमारी की शुरूआत से ही पोषक तत्वों जैसे कि निआसिन और प्रोटीनों की कमी हो जाती है। कुछ लोगों में ये लक्षण बाद में विकसित होते हैं।



फेफड़ों का न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर : यह फेफड़ों में विकसित होता है। फेफड़ों में विकसित होने वाला एनईटी अधिकतर कार्सिनॉयड ट्यूमर होता है। फेफड़ों में ट्यूमर अधिकतर वायुमार्गों में विकसित होता है जिसके लक्षण होते हैंः लगातार कफ बने रहना, कफ में खून का आना, सांस लेने में कठिनाई होना, थकान होना, न्यूमोनिया होना, कार्सिनॉड सिंड्रोम – इसमें त्वचा का छिलना, डायरिया और सांस में घरघराहट होना शामिल है।



एड्रीनल ग्रंथि का न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर या फीओक्रोमोसाइटोमाः फीओक्रोमोसाइटोमा एक दुर्लभ ट्यूमर है जो एड्रीनल ग्रंथि की क्रोमाफिन कोशिकाओं में बनता है। ये विशेषीकृत कोशिकाएं तनाव के समय एड्रीनेलिन हार्मोन निस्स्रवित करती हैं। फीओक्रोमोसाइटोमा अधिकतर एड्रीनल ग्रंथियों के भीतरी भाग एड्रीनल मेड्यूला में होता है। इस प्रकार के ट्यूमर से एड्रीनेलिन और नॉरएड्रीनेलिन हार्मोनों का उत्पादन बढ़ जाता है, जिससे रक्त चाप और हृदय गति बढ़ जाती है। हालांकि फीओक्रोमोसाइटोमा आमतौर से अकैंसरकारी होता है, फिर भी इससे जीवन को खतरा हो सकता है क्योंकि ट्यूमर बहुत बड़ी मात्रा में एड्रीनेलिन रक्त प्रवाह में निर्मुक्त कर सकता है। फीओक्रोमोसाइटोमा से पीड़ित अस्सी प्रतिशत लोगों में ट्यूमर एक ही एड्रीनल ग्रंथि में होता है, दस प्रतिशत लोगों में दोनों ग्रंथियों में, जबकि दस प्रतिशत लोगों में ट्यूमर एड्रीनल ग्रंथियों के बाहर होता है।

इसके लक्षण होते हैंः उच्च रक्तचाप होना, उत्तेजना के दौरे पड़ना, ज्वर आना, सिरदर्द होना, पसीना आना, मचली होना, वमन होना, चिपचिपी त्वचा, नाड़ी की गति तेज होना और दिल की धड़कन तेज होना।

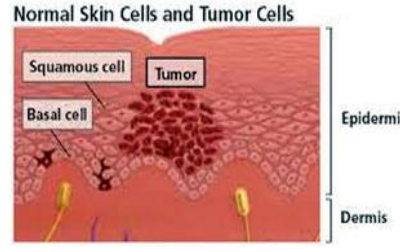
त्वचा का न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर या मर्केल कोशिका कैंसरः मर्केल कोशिका कैंसर अत्यंत आक्रामक, या तेजी से बढ़ने वाला दुर्लभ कैंसर होता है। यह त्वचा के ठीक नीचे हार्मोन उत्पादक कोशिकाओं, हेयर फॉलिकिल्स में होता है। यह आमतौर से सिर और गर्दन वाले भाग में होता है। मर्केल कोशिका कैंसर को त्वचा का न्यूरोएंडोक्राइन कार्सिनोमा या ट्रेबेकुलर कैंसर भी कहते हैं। त्वचा पर लाल, गुलाबी या नीले रंग के दर्द रहित कड़े, चमकदार पिंड होना ही मर्केल कोशिका कैंसर के प्रमुख लक्षण होते हैं।

मर्केल कोशिका कैंसर अत्यंत आक्रामक, या तेजी से बढ़ने वाला दुर्लभ कैंसर होता है। यह त्वचा के ठीक नीचे हार्मोन उत्पादक कोशिकाओं, हेयर फॉलिकिल्स में होता है। यह आमतौर से सिर और गर्दन वाले भाग में होता है। मर्केल कोशिका कैंसर को त्वचा का न्यूरोएंडोक्राइन कार्सिनोमा या ट्रेबेकुलर कैंसर भी कहते हैं। त्वचा पर लाल, गुलाबी या नीले रंग के दर्द रहित कड़े, चमकदार पिंड होना ही मर्केल कोशिका कैंसर के प्रमुख लक्षण होते हैं।

खतरे के कारक

किसी भी व्यक्ति में निम्न कारक न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर विकसित होने के खतरे को बढ़ा सकते हैंः

- **आयु :** फीओक्रोमोसाइटोमा सामान्यतया 40 से 60 वर्ष आयु के लोगों में होता है। मर्केल कोशिका कैंसर 70 वर्ष से अधिक आयु के लोगों में होता है।
- **लिंग :** फीओक्रोमोसाइटोमा स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिक होता है। मर्केल कोशिका कैंसर भी स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में ही अधिक होता है।
- **जाति/नस्ल :** मर्केल कोशिका कैंसर अकसर श्वेत लोगों में होता है। कुछ अश्वेतों और पॉलीनेशिया के लोगों में भी यह रोग देखा गया है।
- **पारिवारिक इतिवृत्त :** डॉक्टरों के अनुसार यह जानलेवा बीमारी का दस प्रतिशत कारण वंशानुगत, या आनुवंशिक होता है। मल्टीपिल एंडोक्राइन निओप्लेसिया टाइप 1 (MEN1) एक वंशानुगत अवस्था है। ट्यूमर के पिट्यूटरी ग्रंथि, पैराथायरॉयड ग्रंथि और अग्नाशय में विकसित होने से खतरा बढ़ जाता है। मल्टीपिल एंडोक्राइन निओप्लेसिया टाइप 2 (MEN2) फीओक्रोमोसाइटोमा सहित मेड्यूलरी थायरॉयड कैंसर तथा अन्य प्रकार के कैंसरों से संबंधित वंशानुगत अवस्था होती है।



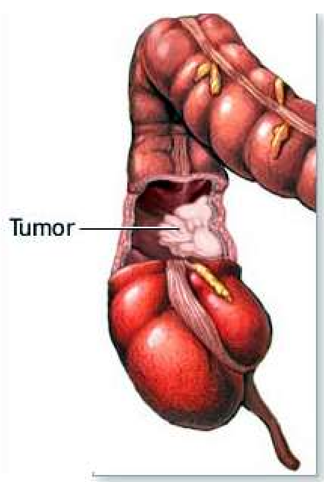


- **कमजोर प्रतिरक्षी तंत्र :** ह्यूमन इम्म्युनोडिफिशियेंसी वाइरस (HIV) से पीड़ित लोग जिन्हें एक्वायर्ड इम्म्युनोडिफिशियेंसी सिंड्रोम (AIDS) होता है, और जिन लोगों का प्रतिरक्षी तंत्र अंग प्रत्यारोपण के कारण कमजोर हो गया हो, उनमें न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर विकसित होने का खतरा बहुत बढ़ जाता है।
- मर्केल कोशिका पोलिओवाइरस (MCV) शोधों में इस वाइरस और मर्केल कोशिका कैंसर के बीच संबंध पाया गया है। मर्केल कोशिका कैंसर के लगभग 80 प्रतिशत रोगियों में एमसीवी पाया गया है। हालांकि वैज्ञानिकों का मानना है कि इसके लिए और अनुसंधान किए जाने की जरूरत है।
- **आर्सेनिक के संपर्क में आना :** वैज्ञानिकों का मानना है कि आर्सेनिक जो एक प्रकार का विष होता है, के संपर्क में आना भी मर्केल कोशिका कैंसर के खतरे को बढ़ा सकता है।
- **डायबिटीज :** जो लोग लंबे समय तक डायबिटीज से पीड़ित होते हैं, उनमें न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर बनने का खतरा बढ़ जाता है। यह खतरा विशेष रूप से स्त्रियों में होता है।
- **कुछ अन्य मेडीकल अवस्थाएं :** अगर बहुत लंबे समय तक आंतों या अमाशय की लाइनिंग में सूजन रहे, इस अवस्था को क्रानिक एट्रॉफिक गैस्ट्रिइटिस कहते हैं, अमाशय या आंतों में न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर विकसित होने का खतरा होता है।

जो लोग अधिक मात्रा में संतृप्त वसाओं का सेवन करते हैं, उनकी छोटी आंत में, कम वसा का सेवन करने वालों की अपेक्षा न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर का खतरा ज्यादा होता है। लेकिन अभी इसे पूरी तरह सिद्ध करने के लिए कि वसा का न्यूरो एंडोक्राइन ट्यूमर से कोई संबंध है, और अनुसंधानों की आवश्यकता है।

न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर होने के कुछ अन्य कारकों का भी अध्ययन किया गया है लेकिन अभी पूरी तरह यह सुनिश्चित नहीं हो सका है कि ये न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर के खतरे को जन्म देते हैं, जैसे कि

- **संतृप्त वसाएं** : एक अमेरिकी अध्ययन में देख गया है कि जो लोग अधिक मात्रा में संतृप्त वसाओं का सेवन करते हैं, उनकी छोटी आंत में, कम वसा का सेवन करने वालों की अपेक्षा न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर का खतरा ज्यादा होता है। लेकिन अभी इसे पूरी तरह सिद्ध करने के लिए कि वसा का न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर से कोई संबंध है, और अनुसंधानों की आवश्यकता है।
- **धूम्रपान और अल्कोहल :** धूम्रपान और अल्कोहल का सेवन संभवतः अग्नाशय में न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर के खतरे को बढ़ा सकते हैं लेकिन निश्चित रूप से कुछ कह पाना अभी संभव नहीं है।
- **मोटापा :** मोटापा अनेक बीमारियों का घर होता है। अमेरिका में किए गए अध्ययनों के अनुसार देखा गया है कि मोटे लोगों की छोटी आंत में न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर का खतरा अधिक होता है।
- **हार्मोन रिप्लेसमेंट थिरैपी** (HRT) **:** हार्मोन रिप्लेसमेंट थिरैपी छोटी आंत में न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर के खतरे को दोगुना कर देती है। लेकिन विभिन्न प्रकार की हार्मोन थिरैपी और उसमें न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर विकसित होने के संभावित खतरे पर और अध्ययन किए जाने की आवश्यकता है।



उपचार

डॉक्टर न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर के उपचार के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग करते हैं। लेकिन जब ट्यूमर के स्पष्ट लक्षण सामने नहीं दिखायी तब सीधे कोई उपचार करना कठिन हो जाता है। न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर बढ़ने की दर अलग अलग होती है लेकिन कभी

कभी वे बहुत धीमी गति से बढ़ते हैं। कभी कभी तो ये महीनों-सालों तक बिना बढ़े यूं ही पड़े रहते हैं। ऐसे में डॉक्टर स्कैनिंग के जरिए केवल इन पर नजर रखते हैं। लेकिन जब ट्यूमर बढ़ने लगता है या उसके लक्षण प्रकट होने लगते हैं तो अगर संभव हो तो ट्यूमर को निकालने के लिए सर्जरी की जाती है। अगर सर्जरी करना संभव न हो तो लक्षणों के अनुसार ट्यूमर के नियंत्रण के लिए अनेक उपचार आजमाए जाते हैं। कई बार एक साथ कई प्रकार के उपचार किए जाते हैं। इनमें शामिल हैं:

सर्जरी : फीओक्रोमोसाइटोमा और मर्केल कोशिका कैंसर के लिए सर्जरी ही प्रमुख उपचार है। सर्जरी के दौरान, डॉक्टर ट्यूमर के साथ, उसके आस पास की कुछ स्वस्थ कोशिकाओं को भी निकाल देते हैं। इसके लिए अधिकतर लैप्रोस्कोपिक सर्जरी की जाती है। अगर सर्जरी से ट्यूमर को निकालना संभव न हो डॉक्टर दूसरे उपचारों की सलाह देते हैं।



रेडिएशन थिरैपी में ट्यूमर कोशिकाओं को नष्ट करने के लिए उच्च ऊर्जा एक्स-किरणों या अन्य कणों का प्रयोग किया जाता है। आमतौर से रेडिएशन थिरैपी की सलाह तब दी जाती है जब ट्यूमर ऐसे स्थान पर हो जहां सर्जरी कर पाना कठिन या असंभव हो। जब न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर फैलने लगता है, तब भी रेडिएशन थिरैपी की जाती है। सामान्यतया दिए जाने वाले रेडिएशन उपचार को एक्सटरनल-बीम रेडिएशन थिरैपी कहते हैं क्योंकि इसमें शरीर के बाहर से मशीन द्वारा रेडिएशन दिया जाता है।

रेडिएशन थिरैपी : रेडिएशन थिरैपी में ट्यूमर कोशिकाओं को नष्ट करने के लिए उच्च ऊर्जा एक्स-किरणों या अन्य कणों का प्रयोग किया जाता है। आमतौर से रेडिएशन थिरैपी की सलाह तब दी जाती है जब ट्यूमर ऐसे स्थान पर हो जहां सर्जरी कर पाना कठिन या असंभव हो। जब न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर फैलने लगता है, तब भी रेडिएशन थिरैपी की जाती है। सामान्यतया दिए जाने वाले रेडिएशन उपचार को एक्सटरनल-बीम रेडिएशन थिरैपी कहते हैं क्योंकि इसमें शरीर के बाहर से मशीन द्वारा रेडिएशन दिया जाता है। जब रेडिएशन उपचार देने के लिए इम्प्लांट का उपयोग किया जाता है तो इसे इन्टरनल रेडिएशन थिरैपी या ब्रेकीथिरैपी कहते हैं। रेडिएशन थिरैपी एक निश्चित अवधि में, निश्चित संख्या में उपचार दिए जाते हैं। मर्केल कोशिका कैंसर के लिए, अकसर रोग की पहली और दूसरी अवस्था में सर्जरी के बाद रेडिएशन थिरैपी दी जाती है। इसे एडजुवेंट थिरैपी कहते हैं। थकान महसूस होना, त्वचा पर चकत्ते बनना, पेट का अपसेट होना या अतिसार होना रेडिएशन थिरैपी के कुछ पार्श्व प्रभाव हैं जो उपचार खत्म होने के बाद स्वयं ही खत्म हो जाते हैं।

कीमोथिरैपी : कीमोथिरैपी में कोशिकाओं के बढ़ने और विभाजित होने की क्षमता को रोक कर, ट्यूमर कोशिकाओं को नष्ट किया जाता है। इसमें शरीर के किसी भी भाग में ट्यूमर कोशिकाओं तक रसायनों को रक्त प्रवाह के जरिए पहुंचाया जाता है। इसमें रोगी को एक बार में एक औषधि या विभिन्न औषधियों के संयोजन को आंतरशिरीय रूप से या गोली के रूप में दिया जाता है। कीमोथिरैपी के पार्श्व प्रभाव व्यक्ति विशेष पर या दी गई औषधि की मात्रा पर निर्भर करते हैं। इनमें थकान, किसी प्रकार का संक्रमण, मचली और वमन, भूख की कमी और डायरिया, बालों का झड़ना आदि प्रमुख हैं।

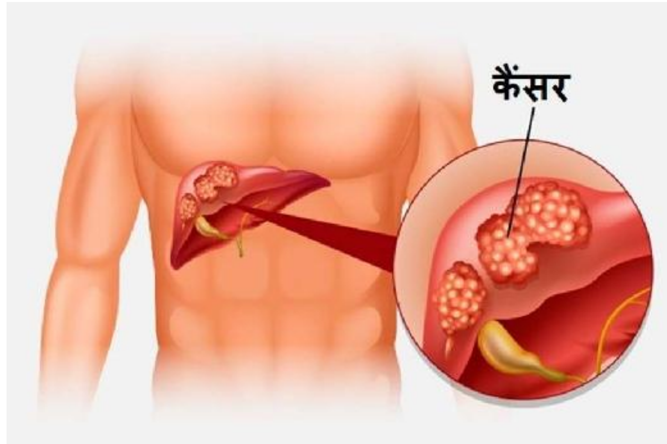
टार्गेटेड थैरेपी : टार्गेटेड थैरेपी या लक्षित उपचार में, उपचार का लक्ष्य मुख्यतः ट्यूमर की विशिष्ट जीन, प्रोटीन, या ऊतकों के आस पास का वह वातावरण होता है जो इसकी वृद्धि में योगदान देता है। इस उपचार से ट्यूमर कोशिकाओं की वृद्धि और प्रसार रुक जाता है और स्वस्थ कोशिकाओं को कुछ खास नुकसान नहीं होता। अध्ययनों में देखा गया है कि सभी ट्यूमरों का समान लक्ष्य नहीं होता। प्रभावी उपचार के लिए पहले सही जीन, प्रोटीन और अन्य कारकों का पता लगाने के लिए अनेक परीक्षण किए जाते हैं।

न्यूरोएंडोक्राइन ट्यूमर का निदान और उपचार दोनों ही ट्यूमर के प्रकार, इसके स्थान के साथ साथ इस पर निर्भर करते हैं कि यह अतिरिक्त हार्मोन का उत्पादन कर रहा है या नहीं, यह कितना आक्रामक है और यह शरीर के अन्य भागों तक फैला है या नहीं। वैज्ञानिक इस बीमारी के उपचार के लिए नए नए तरीकों की खोज में जुटे हैं। डॉक्टरों का मानना है कि यह बीमारी बेहद दुर्लभ तो है लेकिन अगर समय रहते इसका पता लग जाए तो यह लाइलाज नहीं है। इसका खतरा सबसे अधिक 40 वर्ष की आयु के आस पास के लोगों को अधिक होता है। रक्त चाप, सिरदर्द और बहुत ज्यादा पसीना आने पर इस उम्र के लोगों को बिना देर किए तुरंत जांच करानी चाहिए।

vineeta_niscom@yahoo.com

एक चुनौतीपूर्ण रोग

पुरूषों में स्तन कैंसर



डॉ. शुभ्रता मिश्रा



वनस्पति शास्त्र में शोध करने वाली डॉ. शुभ्रता मिश्रा युवा विज्ञान लेखिका हैं आपने इंडिया साइंस वॉयर, विज्ञान प्रसार में अब तक 350 विज्ञान कथा और लेख लिखे हैं। आपके विज्ञान लेख आकाशवाणी से प्रसारित होते रहे हैं। अंग्रेजी में पंद्रह तथा हिन्दी में पांच पुस्तकें लिखीं जिनमें 'भारतीय अंटार्कटिक संभारतंत्र' काफी चर्चित हुई है। इस किताब को राष्ट्रीय अंटार्कटिक एवं समुद्री अनुसंधान केन्द्र, पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित किया गया है। कई पुरस्कारों से सम्मानित डॉ. शुभ्रता गोवा में रहती हैं।

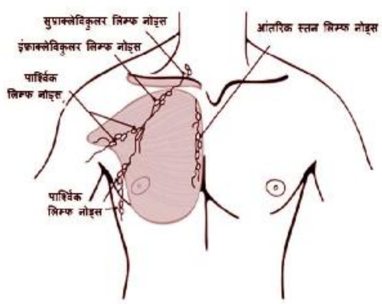
यह एक आम मानवीय प्रवृत्ति होती है कि जब तक पानी सिर से न गुजरने लगे, तब तक किसी बात पर ध्यान नहीं दिया जाता है। अब ये बातें या तो स्वयं मनुष्य से संबंधित बीमारियों की हों या फिर उसके आसपास के पर्यावरण से संबंधित रही हों। आज पर्यावरण में चरम पर पहुंच रहे विभिन्न प्रकार के प्रदूषण और तरह तरह के कैंसरों से जूझ रहे मनुष्यों के लिए काफी हद तक मनुष्य की यही लापरवाह प्रवृत्ति जिम्मेदार है। ऐसा ही एक विषय पुरुषों में स्तन कैंसर का कहा जा सकता है, जिसको चिकित्सकीय, सामाजिक और व्यक्तिगत सभी दृष्टिकोणों से बहुत अधिक गम्भीरता से नहीं लिया जा रहा है। इस विषय को सिर्फ यह जानकर नहीं टाला जा सकता कि पुरुष स्तन कैंसर बेहद दुर्लभ बीमारी है, जो अनुमानतः प्रतिवर्ष एक लाख पुरुषों में से मात्र एक को ही हो सकती है।

पुरुष स्तन कैंसर के संबंध में जब सामान्य स्तर पर चर्चा की जाती है, तब सबसे पहला आम प्रश्न यही सामने आता है कि पुरुषों में स्तन कैंसर हो ही नहीं सकता, क्योंकि यह अंग उनमें उपस्थित ही नहीं होता। इसका सबसे सरल और सहज जीववैज्ञानिक उत्तर यही है कि मनुष्य एक स्तनधारी प्राणी है, जो स्तनधारियों की लगभग 4,200 विभिन्न प्रजातियाँ में से सर्वश्रेष्ठ है। मनुष्य के नर व मादा दोनों प्राणियों में स्तन ऊतक, स्तन ग्रंथियां पाई जाती हैं, परन्तु मादा में ये सक्रिय होती हैं, जबकि नर में केवल अवशेषी अंग के रूप में पाई जाती हैं।

चिकित्सा क्षेत्र में भी पुरुष स्तन कैंसर की पुष्टि हो चुकी है। हांलाकि अन्य कैंसरों के शोधों की तुलना में पुरुष स्तन कैंसर पर शोध बहुत कम देखने सुनने में आते हैं। हाल ही में कैंसर अध्ययन और निदान के लिए विश्वविख्यात अमेरिका के दो शोध संस्थानों अमेरिकन सोसायटी ऑफ ब्रेस्ट सर्जन्स और अमेरिकन सोसायटी ऑफ क्लिनिकल ऑकोलोजी (एएससीओ) की 2018 की वार्षिक बैठके अलग अलग क्रमशः पिछले मई और जून के प्रथम सप्ताहों में सम्पन्न हुईं। इनमें दुनियाभर के हजारों कैंसर विशेषज्ञों ने भाग लिया और विभिन्न तरह के कैंसरों संबंधी अपने शोधपत्रों के परिणामों पर विचार विमर्श किए। लेकिन सोचने का विषय यह है कि इन बैठकों में पुरुष स्तन कैंसर से संबंधित शोधपत्र का जिक्र लगभग न के बराबर ही रहा।

चिकित्सकों का मानना है कि पुरुष स्तन कैंसर की सापेक्ष दुर्लभता के कारण इसके चिकित्सकीय गहन अध्ययनों के लिए संबंधित नमूनों की मात्रा बहुत कम उपलब्ध हो पाती है। अतः पुरुष स्तन कैंसर की ईटियोलॉजी अर्थात् हेतुकी या इसके निदान पर विचार करना कठिन हो गया है। सही मायनों में इस बीमारी की दुर्लभता ने इसे कैंसर विशेषज्ञों के लिए चुनौतीपूर्ण बना दिया है। इसके बावजूद भी यह नहीं कहा जा सकता कि इस विषय

पर शोध नहीं किए जा रहे हैं। विश्व के कई संस्थानों में विभिन्न स्तरों पर कैंसर विशेषज्ञों द्वारा पुरूष स्तन कैंसर से संबंधित किए गए अध्ययनों में सामने आए एक उभयनिष्ठ परिणाम के अनुसार अस्सी प्रतिशत पुरुषों को इस बारे में जानकारी ही नहीं होती है कि उनमें स्तन कैंसर का खतरा हो सकता है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि अधिकतर पुरुष अपने स्तन कैंसर के लक्षण प्रारम्भिक स्तर पर पहचान ही नहीं पाते हैं। अतः ज्यादातर मामलों का पता रोग के बिल्कुल अंतिम स्तर पर ही चल पाता है। यही कारण है कि महिलाओं के स्तन कैंसर के मामलों की तुलना में पुरुषों के स्तन कैंसर के मामलों में मृत्यु दर अधिक पाई गई है। साथ ही देरी से जानकारी मिलने से पुरुष स्तन कैंसर कई बार काफी बढ़ सकने से उसके अन्य अंगों तक पहुंचने का भी खतरा बढ़ जाता है।



कुछ दशकों के दौरान हुए अलग-अलग सर्वेक्षणों के आंकड़ों से जानकारी मिली है कि पुरुष स्तन कैंसर के मामले सत्तर और अस्सी के दशकों के बीच लगभग 0.86 से बढ़कर 1.08 प्रति 100,000 बढ़े थे। हालॉकि इसके बाद के दशकों में इनकी दर काफी स्थिर रही, फिर भी पिछले पच्चीस सालों में पुरुषों में स्तन कैंसर के मामले बढ़े हैं। प्रायः पुरुष स्तन कैंसर के मामलों की जाँच के लिए एसईईआर डेटाबेस (<http%@@seer-cancer-gov@>) का उपयोग किया जाता है। एक बात और सामने आई है कि चालीस साल के बाद पुरुषों में स्तन कैंसर होने की संभावना बढ़ जाती है। हांलाकि पुरुषों में स्तन कैंसर होने की संभावना बुजुर्गों में अधिक होती है, लेकिन फिर भी यह किसी भी उम्र के व्यक्ति में हो सकता है।

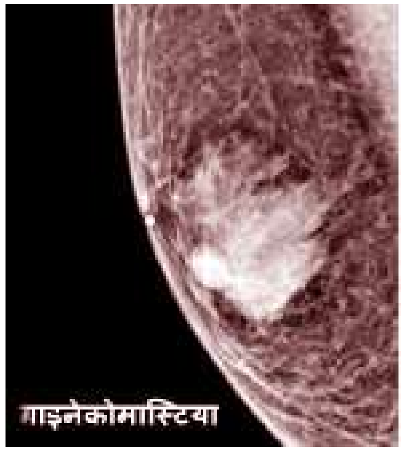
विभिन्न स्तरों पर हुए पुरुष स्तन कैंसर संबंधी शोधों और अध्ययनों से इस बीमारी के कारणों का पता लगाया जा चुका है। इसे स्पष्टतौर पर दो तरीकों से समझा जा सकता एक सामान्य लोगों की भाषा में और दूसरा चिकित्सकीय भाषा में। साधारण तौर पर मोटापा, उच्च रक्तचाप, मधुमेह, हाईपरकोलेस्ट्रोलेमिया, अतिअल्कोहल सेवन और यकृत की बीमारी, किसी कारण से ली गई रेडियेशन थेरेपी पुरुषों में भी स्तन कैंसर होने के बड़े कारण माने गए हैं। आनुवांशिक कारणों जैसे किसी के परिवार में यदि किसी निकटस्थ सदस्य को कभी स्तन कैंसर हुआ हो, तब ऐसी स्थिति में भी इस रोग के होने का खतरा हो सकता है। यह पाया गया है कि पुरुष स्तन कैंसर के मामलों में कम से कम दस प्रतिशत योगदान आनुवांशिकी स्तन कैंसर का होता है। चिकित्सकीय भाषा में स्तन कैंसर के दो बड़े कारणों में एक एस्ट्रोजन हारमोन के स्तर में वृद्धि और दूसरा बीआरसीए-1 एवम् बीआरसीए-2 नामक दो जीनों में उत्परिवर्तन प्रमुख हैं।

ऐसे देखा जाए तो पुरुष और महिला दोनों के शरीर में कुल 230 हार्मोन होते हैं, जो शरीर की भिन्न-भिन्न क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं। हार्मोन में थोड़ा सा बदलाव ही शारिरिक चयापचय को प्रभावित करने के लिए काफी होता है। एस्ट्रोजन एक तरह का प्राकृतिक हार्मोन होता है, जो पुरुषों और महिलाओं दोनों में ही पाया जाता है। लेकिन मुख्य रूप से यह हारमोन महिलाओं में प्रजनन और यौन विकास संबंधी सामान्य शारीरिक क्रियाओं जैसे गर्भधारण और रजोनिवृत्ति लिए अधिक महत्वपूर्ण होता है। अतः महिलाओं में इस हारमोन की अधिक महत्ता और आवश्यकता होती है। सामान्य स्थिति में पुरुषों में इसका स्तर नगण्य ही होता है। किन्हीं कारणों से जब पुरुषों में एस्ट्रोजन हारमोन का स्तर बहुत अधिक बढ़ जाता है तब उनमें स्तन कैंसर होने की सम्भावना भी बढ़ जाती है।

कई बार यह भी पाया गया है कि पुरुषों में मोटापे के कारण शरीर में वसा कोशाओं की संख्या बढ़ जाती है जिससे बाद में ट्यूमर बन सकता है। इसके अलावा वसा कोशाएं एस्ट्रोजन में भी परिवर्तित हो सकती हैं जिससे शरीर में एस्ट्रोजन की मात्रा बढ़ती है। कुछ पुरुषों में यदि पहले से प्रोस्ट्रेट कैंसर, टेस्टीकुलर कैंसर, एरोमेटेज़ न्यूनता है, तब इसके लिए उनको हारमोन थैरेपी के दौरान एस्ट्रोजन युक्त दवाईयां लेनी होती हैं। इससे भी एस्ट्रोजन का स्तर बढ़ सकता है, जो स्तन कैंसर का भी कारण बन सकता है। यकृत संबंधी बीमारियों से ग्रस्त पुरुषों में रक्त में एस्ट्रोजन हारमोन के नियमन की क्षमता परिवर्तित हो जाती है। अतः यह माना जाता है कि अधिक अल्कोहल सेवन से प्रभावित यकृत के कारण भी पुरुष स्तन कैंसर हो सकता है। हालाँकि इससे संबंधित गहन शोधों की अभी बहुत आवश्यकता है। क्लिनफेल्टर सिंड्रोम से ग्रसित पुरुषों में भी एस्ट्रोजन का स्तर प्राकृतिक रूप से अधिक होता है।

आम तौर पर सामान्य अवस्था में बीआरसीए-1 एवम् बीआरसीए-2 नामक दोनों जीन कैंसर ट्यूमर को बढ़ने से रोकने में सहायता करते हैं। लेकिन कभी-कभी किसी व्यक्ति को अपने पूर्वजों से बीआरसीए-1 या बीआरसीए-2 का उत्परिवर्तित रूप आनुवांशिक रुप से प्राप्त होता है। एक चिकित्सकीय शोध में पाया गया था कि उत्परिवर्तित बीआरसीए-1 और बीआरसीए-2 जीनों से क्रमशः 1.5 प्रतिशत और 5-10 प्रतिशत पुरुष स्तन कैंसर होने की सम्भावना बढ़ सकती है। दोनों जीनों में उत्परिवर्तन डिम्बग्रंथि के कैंसर से भी जुड़ा हुआ है। बीआरसीए-2 जीन के कारण होने

वाला पुरुष स्तन कैंसर अधिक खतरनाक होता है, जो रजोनिवृत्त महिलाओं में होने वाले स्तन कैंसरों से काफी समानता रखता है।



महिलाओं में होने वाले स्तन कैंसर की तरह ही पुरुष स्तन कैंसर के प्रमुख लक्षणों में स्तन और कांख में बिना दर्द की गाँठ का बनना सबसे महत्वपूर्ण संकेत है। इसके अलावा वक्ष के आसपास रूखापन या कड़ापन, खुजली और रैशेज जैसे लक्षण दिखाई देना, गले में धाव, स्तन क्षेत्र या निपल के चारों ओर की त्वचा पर गड्ढ़े पड़ना या उसका बदलना, धाव या छाला होना, निपल में दर्द और गीले पदार्थ का स्त्राव होना, निपल के चारों तरफ जख्म होना, गांठ का कांख और स्तन क्षेत्र तक बढ़ना भी अन्य लक्षण हैं। स्तनों के आसपास की त्वचा से खून निकलना और हाथ लगाने पर ही दर्द महसूस होना भी इसके संकेत दे सकते हैं। आमतौर पर इस तरह के दर्द को पुरुष छाती में होने वाला दर्द मान लेते हैं। अपवाद स्वरूप कुछ पुरुषों में स्तन-वृद्धि जिसे चिकित्सकीय भाषा में 'गाइनेकोमास्टिया' कहते हैं, इससे भी स्तन कैंसर का खतरा बढ़ सकता है।

सामान्यतौर पर टेस्टोस्टेरोन पुरुषों में पाया जाने वाला प्रमुख हारमोन होता है, जो वृषण और एड्रीनल ग्रंथि से स्त्रावित होता है। यदि किन्हीं कारणों से पुरुषों में टेस्टोस्टेरोन का स्तर कम हो जाता है और एस्ट्रोजन हारमोन का स्तर बढ़ जाता है, तब 'गाइनेकोमास्टिया' की शुरुआत होने की आशंका हो सकती है। हांलाकि यह पुरुषों में होने वाली एक अलग ही बीमारी है, जिसे समुचित उपचार द्वारा ठीक किया जा सकता है। इलाज न होने की स्थिति में यह बढकर पुरुष स्तन कैंसर का कारण बन सकती है।

वैसे तो चिकित्सकीय गहनताओं के आधार पर स्तन कैंसर कई प्रकार के होते हैं, लेकिन डक्टल कार्सिनोमा अर्थात् स्तन वाहिकाओं से होने वाला और लोबुलर कार्सिनोमा अर्थात् परलिकाओं या लोब्स से होने वाले स्तन कैंसर के बारे में अधिक अध्ययन हुए हैं। पुरुष स्तन वसा ऊतक, संयोजी ऊतक और कुछ शाखादार वाहिकाओं से बना होता है, लेकिन इनमें लोब्स नहीं होते हैं। इस कारण पुरुष स्तन में प्रायः डक्टल कार्सिनोमा अधिक देखा गया है, लेकिन लोबुलर कार्सिनोमा लगभग न के बराबर होता है। पुरुष स्तन कैंसर का सबसे आम प्रकार आक्रामक डक्टल कार्सिनोमा है। एक अमेरिकी शोध में 2,000 से अधिक पुरुष रोगियों के एसईईआर के आंकड़ों पर अध्ययन करने पर पाया गया है कि 93.7 प्रतिशत पुरुष स्तन कैंसर डक्टल या अवर्गीकृत कैंसर हैं। इसके अतिरिक्त 2.6 प्रतिशत पैपिलरी कैंसर, 1.8 प्रतिशत म्यूसीनस या श्लेष्म कैंसर और केवल 1.5 प्रतिशत लोबुलर कैंसर पाए गए। पुरुष स्तन कैंसर में उच्च दर के हार्मोन ग्राह्य धनात्मक ट्यूमर होते हैं। लगभग नब्बे प्रतिशत पुरुष स्तन कैंसर एस्ट्रोजेन रिसेप्टर पॉजिटिव (ईआर+) और 81 प्रतिशत प्रोजेस्टेरोन पॉजिटिव (पीआर+) होते हैं। इसके अलावा, एचईआर-2 ट्यूमर के एक अध्ययन में पाया गया कि पुरुष स्तन ट्यूमर केवल पांच प्रतिशत धनात्मक था। इसी शोध में एंड्रोजन प्रोटीन की उच्च मात्रा का संबंध लिम्फ नोड के फैलने और पुरुष स्तन कैंसर के लिए निदान की एक छोटी सी आशा साबित हो सकती है।

पुरुष स्तन कैंसरों से दो तरह से बचा जा सकता है। पहला या तो पूर्व में ही कुछ सावधानियां बरती जाएं, तो इस रोग के होने की सम्भावना कम की जा सकती है। और दूसरा यदि पुरुष इस रोग का शिकार हो ही गया है, तब कई थैरेपियों सहित और भी उपचार उपलब्ध हैं। सावधानियों में सबसे आवश्यक है कि व्यक्ति अपने शरीर का एक आदर्श वजन निर्धारित बनाकर रखे और स्वस्थ व संतुलित आहार करे। धूम्रपान और अल्कोहल के सेवन से परहेज करे। साथ ही यह बेहद जरुरी है कि पुरुषों को कैंसर संबंधी अपनी पारिवारिक जानकारियों के बारे में मालूम होना चाहिए। किसी भी तरह की आशंका होने पर तुरंत चिकित्सकीय परामर्श, आवश्यक परीक्षण और उपचार के प्रति जरा भी लापरवाही नहीं बरतनी चाहिए।

पुरुष स्तन कैंसर का चिकित्सकीय उपचार सबसे पहले इस बात पर निर्भर करता है कि वह कैंसर की किस स्तर तक पहुँच चुका है। इसमें चार स्तर पाए जाते हैं, पहला उच्चतर स्तर, दूसरा आकार में बड़ा होना, तीसरा कैंसर का फैलाव और चौथा कैंसर का अन्य अंगों, अस्थियों, मस्तिष्क, यकृत या फेफड़ों तक अत्यधिक आक्रामक फैलाव। क्योंकि पुरुषों में स्तन कैंसर बड़ी उम्र में ज्यादा होता है, इसलिए उपचार के लिए रोगी की उम्र और शारिरिक क्षमता का भी विशेष ध्यान रखना होता है। पुरुष स्तन कैंसर के उपलब्ध उपचारों में महिला स्तन कैंसर की ही तरह शल्यक्रिया उपचार और विकिरण चिकित्सा या रेडिएशन थैरेपी शामिल हैं। लम्पेक्टोमी शल्यक्रिया का सबसे आम उपचार है, जिसमें शल्यक्रिया द्वारा ट्यूमर और इसके आसपास ऊतकों का कुछ भाग हटा दिया जाता है। सामान्य मास्टेक्टोमी का उपयोग तब किया जाता है, जब कैंसर व्यापक स्तर पर होता है। इसमें सभी स्तन ऊतकों को हटा दिया जाता है। यदि कैंसर कांखों में लिम्फ नोड्स में फैल जाता है, तब पूरे स्तन ऊतकों और अधिकांश या

सभी लिम्फ नोड्स हटा दिए जाते हैं। इसे एक संशोधित रेडिकल मास्टक्टोमी कहते हैं।



विकिरण चिकित्सा द्वारा पुरुष स्तन कैंसर के उपचार में कैंसर कोशिकाओं को नष्ट करने और ट्यूमर की वृद्धि को रोकने के लिए उच्च ऊर्जा एक्स-किरणों अथवा अन्य प्रकार के विकिरणों का उपयोग किया जाता है। कीमोथेरेपी में कैंसर कोशिकाओं को शक्तिशाली दवाओं के उपयोग द्वारा नष्ट किया जाता है। इसमें सीधे अंतःशिरा (नसों के माध्यम से) या गोलियों के रूप में या दोनों तरीकों से उपचार दिया जाता है। अधिकांश प्रकार के पुरुष स्तन कैंसर हार्मोन पर निर्भर हैं और हार्मोन के साथ इलाज के लिए उत्तम प्रतिक्रिया देते हैं। अतः हार्मोन थेरेपी भी इसके उपचार का एक अच्छा माध्यम है। टेमोक्सिफ़ेन हार्मोन थेरेपी में इस्तेमाल की जाने वाली एक उपयोगी दवा है। लक्षित थेरेपी भी काफी प्रचलित उपचारों में शामिल है। कुछ स्तन कैंसर कोशिकाएं एचईआर-2 नामक एक प्रोटीन उत्पादित करती हैं, जो कैंसर कोशिकाओं की वृद्धि और जीवित बने रहने के लिए आवश्यक होता है। ट्रासटुजुमाब (हरसेप्टिन) और लेपेटिनिब (टिकरबो) दो ऐसे ड्रग हैं जो इस एचईआर-2 प्रोटीन को लक्ष्य बनाकर उसकी क्रिया को अवरुद्ध करते हैं और विकास को रोकते हैं। इनके अलावा बेवासिजुमाब एक ऐसी दवा है जो ट्यूमरों में रक्त वाहिकाओं के विकास के संकेतों के साथ हस्तक्षेप करती है, जिससे ट्यूमर की रक्त आपूर्ति कम हो जाते है। हालांकि इस दवा के उपयोग की मंजूरी अभी तक अमेरिकी खाद्य एवम् औषधि प्रशासन, एफडीए (Food and Drug Administration) द्वारा नहीं दी गई है। चिकित्सा वैज्ञानिक भी शोध द्वारा यह साबित करने में कामयाब नहीं हुए हैं कि यह दवा रोगियों के लिए कोई सार्थक लाभ प्रदान करती है।

इस तरह देखा जाए तो पुरुष स्तन कैंसर से संबंधित विभिन्न तरह के विवरणों के बावजूद भी इस क्षेत्र में शोधों की काफी कमी महसूस की जा रही है। यही कारण है कि इससे संबंधित प्रकाशित शोधपत्रों की संख्या भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं है। विज्ञान के प्रतिष्ठित जर्नल नैचर की वैबसाइट नैचर.कॉम के साइंटिफिक रिपोर्टस में 11 जून 2018 को चीन के चिकित्सकों का एक शोधपत्र प्रकाशित हुआ है जिसमें उन्होंने स्त्री व पुरुष स्तन कैंसरों का तुलनात्मक अध्ययन किया है। इस शोधपत्र में दोनों तरह के स्तन कैंसरों का गहन अध्ययन रोगियों की आयु, जाति, वैवाहिक स्थिति, हारमोनों एस्ट्रोजेन और प्रोजेस्टेरोन रिसेप्टर्स, प्राथमिक ट्यूमर के आकार, कैंसर ग्रेड और कीमोथेरेपी, रेडियोथेरेपी और सर्जरी जैसे विभिन्न सामान्य और चिकित्सकीय आधारों पर किया गया। चिकित्सकों का मानना है कि उन्होंने विश्वसनीय और सुविधाजनक साधन के रूप में एक ऐसे व्यापक और व्यावहारिक नोमोग्राम को तैयार किया है, जिसके माध्यम से समग्र रुप से पुरुष व स्त्री स्तन कैंसरों के पूर्वानुमान की सफलतापूर्वक भविष्यवाणी की जा सकती है। उनका यह शोध कैंसर चिकित्सकों के लिए काफी उपयोगी साबित हो सकता है, क्योंकि उनको रोगियों को कैंसर के जोखिम स्तर के अनुसार वर्गीकृत करके चिकित्सा थैरेपियों का चयन करने में सहायता मिल सकती है। अतः यह कहा जा सकता है कि इस तरह के कुछ शोधों से ही चिकित्सा जगत में पुरुष स्तन कैंसर के भविष्य में और अधिक गहन अध्ययन की सोच पनपेगी। इसके पहले कुछ और भी शोधपत्र प्रकाशित हुए हैं, जिनमें 13 जनवरी 2017 को नैचर.कॉम के ही माडर्न पैथोलॉजी जर्नल में पुरुष स्तन कैंसर पर प्रकाशित शोधपत्र भी विशेष उल्लेखनीय है। यह शोध नीदरलैंड, बेल्जियम, पुर्तगाल, अमेरिका, कनाडा, स्कॉटलैंड, स्वीडन और ब्रिटेन के कैंसर चिकित्सकों द्वारा सामुहिक रुप से एक इंटरनेशनल मेल ब्रेस्ट कैंसर प्रोग्राम के तहत किया गया था। इस अध्ययन को पुरुष स्तन कैंसर के प्रकारों की चिकित्सकीय समझ को बढ़ाने के उद्देश्य से किया गया था।

पुरुष स्तन कैंसर को केवल उसके दुर्लभ होने के कारण जागरुकता का विषय न बनने देना भविष्य में धातक साबित हो सकता है। कोई भी रोग अपने प्रारम्भिक स्तर पर कम प्रतिशत में ही होता है और अचानक कब और कैसे भयावह रुप ले लेता है, इसका अंदाजा चिकित्सक वर्ग को भी नहीं रहता। अतः पुरुष स्तन कैंसर जैसे लगभग अनजाने विषय पर गम्भीरता से सोचना आवश्यक है। जैसा कि आंकड़ों से स्पष्ट है कि 40 से 60 साल तक के पुरुषों में स्तन कैंसर के बढ़ने का खतरा सबसे अधिक होता है। अतः पुरुषों को विशेषतौर पर उम्र के इस पढ़ाव के बाद स्तन कैंसर के प्रति जागरुक रहना होगा।

चिकित्सा स्तर पर किए जा रहे पुरुष स्तन कैंसर संबंधी नैदानिक अध्ययनों से भविष्य में इसके बेहतर उपचार में उन्नति के आसार दिखाई दे रहे हैं। लेकिन चिकित्सकीय निदानों के साथ साथ सांस्कृतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और विशिष्ट शारीरिक क्षेत्रों में भी उतने ही प्रयासों की आवश्यकता है। इसके लिए एक ऐसे माहौल को निर्मित करना होगा जहां पुरुष वर्ग स्तन कैंसर के प्रति जागरुक बन सके और चिकित्सक भी संबंधित आंकड़ों को पर्याप्त मात्रा में एकत्रित करके उनके परिणामों का उचित विश्लेषण कर पाएं।

shubhratarayi@gmail.com

बायोस्टैटिस्टिक्स





संजय गोस्वामी



संजय गोस्वामी विगत पंद्रह वर्षों से विज्ञान लेखन से जुड़े हैं आपने हिन्दी विज्ञान के क्षेत्र में तीन सौ से अधिक कॅरियर लेख लिखे हैं जो विज्ञान विषयक होते हैं। 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिये' में वे विगत लगभग पांच वर्षों से शृंखलाबद्ध लिख रहे हैं। इसके अतिरिक्त विज्ञान लेख, विज्ञान समाचार, विज्ञान कविता, विज्ञान रपट, विज्ञान समीक्षा आदि का लेखन और प्रकाशन हुआ है। कई पुरस्कारों से सम्मानित संजय गोस्वामी हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद्, भा.प.अ. केन्द्र, मुंबई के कार्यकारी सदस्य हैं। आप इन दिनों मुंबई में रहकर हिन्दी विज्ञान पत्रिका में लेखन एवं संपादन से संबद्ध हैं।

साइंस के हरेक विषय की खासियत है कि वह अपनी अलग-अलग शाखाओं में कॅरियर और रिसर्च के ढेरों बेहतरीन अवसर देता है। सांख्यिकी भी ऐसा ही एक विषय है। हमारी रोजमर्रा की जिंदगी को प्रभावित करने वाला यह विज्ञान नौकरी के मौकों से भरपूर है। साथ ही परम्परागत सोच रखने वालों को भी अब यह समझ आ गया है कि प्रयोगशाला के बाहर भी ढेरों अवसर पैदा कर रही है और इंडस्ट्री आधारित बेहतरीन जॉब प्रोफाइल्स उपलब्ध करवा रही है। ऐसे में भविष्य के लिहाज से यह एक सुरक्षित विकल्प है। बायोस्टैटिस्टिक्स स्टैटिस्टिक्स की शाखा जो जीवित जीवों से संबंधित बड़ा डाटा को एनालाइज करती है। मेडिकल साइंस या लाइफ साइंस में रिसर्च का बहुत महत्व है। वैज्ञानिक डीएनए और कोशिकाओं पर शोध के ही पुरानी व आनुवंशिक बीमारियों के लिए उपचार ढूंढने की कोशिश करते हैं। बायोस्टैटिस्टिक्स के माध्यम से विज्ञान का अध्यनन और रिसर्च एक अलग ही ऊँचाई पर पहुँच गई है।

बायोस्टेटिस्टिक्स का इस्तेमाल अलग-अलग क्षेत्रों में किया जाता है, जैसे स्वास्थ्य, कृषि, पर्यावरण, ऊर्जा, बायोटेक्नॉलॉजी और बायोमेडिकल रिसर्च। अब इसका इस्तेमाल मॉलिक्युलर मेडिसिन के लिए भी किया जा रहा है ताकि बीमारियों के उपचार के लिए बेहतर और कस्टमाइज्ड दवाईयाँ तैयार की जा सकें। इसमें वैज्ञानिक या शोधकर्ता अलग-अलग प्रजातियों के जेनेटिक डाटा का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं। इसके बाद उसका विश्लेषण किया जाता है। स्टैटिस्टिक्स की मदद से मॉलिक्युलर बायोलॉजी में बायोलॉजिकल डाटा को मैनेज व एनालाइज किया जाता है। बायोलॉजी की इसी शाखा को बायोस्टैटिस्टिक्स कहा जाता है। इसमें बायोलॉजिकल डाटा को इकट्ठा करने, स्टोर करने, मर्ज करने और एनालाइज करने के लिए कम्प्यूटर्स का इस्तेमाल किया जाता है। इसमें जीन्स और डीएनए का अध्ययन किया जाता है।

बायोस्टेटिस्टिक्स का शाब्दिक अर्थ होता है जैव-सांख्यिकी, जीवधारियों से संबंधित संख्या का विज्ञान। यह जीव विज्ञान की एक शाखा है। गणित और आँकड़े की विधि के प्रयोग द्वारा जीवित वस्तुओं के जैव गुणों का वर्णन और वर्गीकरण बायोस्टैटिस्टिक्स कहलाता है। इसका संबंध विशेषतः आँकड़े की विधि से जैव पदार्थों में विभिन्नता, उनकी आबादी संबंधी समस्याएँ और उनमें किस आवृत्ति से घटनाएँ घटित होती हैं, इत्यादि के विश्लेषण से हैं। जीवों के वर्गीकरण विज्ञान में बायोस्टैटिस्टिक्स का सदा से विशेष महत्व रहा है। किसी जाति की आबादी निवास स्थान के अनुसार भिन्न हो सकती है अथवा दो जनसंख्याएँ किसी विशेष गुणों में परस्पर व्याप्त (Overlap) हो सकती हैं अथवा कोई आबादी अनेक जातियों का सम्मिश्रण हो सकती है। बायोस्टैटिस्टिक्स एक नया विज्ञान है, आज इसका प्रयोग व्यापक रूप से जीवित वस्तुओं के जैव गुणों के क्षेत्र में हो रहा है और उससे प्राप्त निष्कर्ष बड़े ही उपयोगी सिद्ध हो रहा है, प्रतिस्पर्धा का अध्ययन, विशेषतः अंतवर्गीय संघर्ष, पहले काल्पनिक विधि द्वारा निर्धारण पर आधारित था। बीसवीं

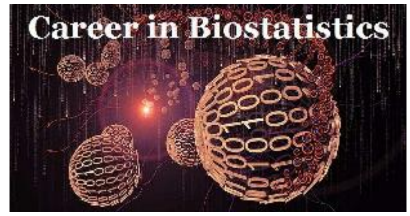
सदी के मध्य में संभाविता संबंधी विधि का प्रवेश हुआ। अतएव घटना की प्रकृति से ही और आँकड़े की प्रकृति के प्रेक्षण की अनिवार्यता से ही इस प्रकार का अध्ययन सांख्यिकीय हो जाता है। इस फील्ड में बायोकैमिस्ट्री, जैनेटिक्स, इम्युनोलॉजी, हैल्थ और मैडीसिन, कैंसर पर शोध, जीन क्रॉपिंग सिस्टम व मैनेजमैंट, इकोलॉजी, सैलबायोलॉजी, सीड टेक्नॉलॉजी, प्लांटफिजियोलॉजी आदि शामिल हैं। बायोस्टैटिस्टिक्स की हेल्थसाइंस में बहुत जरूरत होती है। इसमें कॅरियर बनाने वालों को कैलकुलस पर अपनी कड़ी पकड़ रखनी होती है। जीवसांख्यिकी का प्रारंभिक अर्थ संभाविता संबंधी था। इसका तात्पर्य था आँकड़े की विधि से, विशेषतः सहसंबंध गुणांक की विधि सं वंश परंपरा का अध्ययन करना। सर फ्रैंसिस गाल्टन (सन् 1822-1911) जीव सांख्यिकी के संस्थापक माने जाते हैं। वे जानना चाहते थे कि पिता से पुत्र में और फिर पौत्र में, इसी भाँति पीढ़ी दर पीढ़ी किसी गुण विशेष का संचरण किस प्रकार होता है। उन्होंने दो नियमों का प्रतिपादन किया, एक पैतृक वंशानुक्रमण का नियम (Law of Ancestral Inheritance) और दूसरा वंश अवनति का (Law of Filial Regression)।

स्टैटिस्टिक्स की मदद से मॉलिक्युलर बायोलॉजी में बायोलॉजिकल डाटा को मैनेज व एनालाइज किया जाता है। बायोलॉजी की इसी शाखा को बायोस्टैटिस्टिक्स कहा जाता है। इसमें बायोलॉजिकल डाटा को इकट्ठा करने, स्टोर करने, मर्ज करने और एनालाइज करने के लिए कम्प्यूटर्स का इस्तेमाल किया जाता है। इसमें जीन्स और डीएनए का अध्ययन किया जाता है।

क्षेत्र

इस क्षेत्र में कॅरियर बनाने के लिए आप बायोस्टैटिस्टिक्स में बीएससी कर सकते हैं। इसके लिए इंटर में साइंस स्ट्रीम होना जरूरी है। बायोस्टैटिस्टिक्स में पोस्ट ग्रेजुएशन करने के लिए बीएससी, बीफार्मा, एमबीबीएस, बीएचएमएस, बीवीएससी जैसी डिग्री होना जरूरी है। आगे बेहतर करियर ऑप्शन्स के लिए आप बायोस्टैटिस्टिक्स में एडवांस्ड डिप्लोमा भी कर सकते हैं लेकिन इसके लिए लाइफ साइंस, फिजिक्स, केमिस्ट्री, मैथ्स, बायोटेक्नॉलॉजी, बायोफिजिक्स, बॉटनी, जूलॉजी, बायोकेमिस्ट्री, माइक्रोबायॉलॉजी, फार्माकोलॉजी, कम्प्यूटर साइंस, एग्रीकल्चर जैसे विषयों में पोस्ट ग्रेजुएशन होना चाहिए। आप बायोस्टैटिस्टिक्स से एमटेक भी कर सकते हैं। बायोस्टैटिस्टिक्स का इस्तेमाल अलग-अलग क्षेत्रों में किया जाता है, जैसे स्वास्थ्य, कृषि, पर्यावरण, ऊर्जा, बायोटेक्नॉलॉजी और बायोमेडिकल रिसर्च। अब इसका इस्तेमाल मॉलिक्युलर मेडिसिन के लिए भी किया जा रहा है ताकि बीमारियों के उपचार के लिए बेहतर और कस्टमाइज्ड दवाइयां तैयार की जा सकें। इसमें वैज्ञानिक या शोधकर्ता अलग-अलग प्रजातियों के जेनेटिक डाटा का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं। इसके बाद उसका विश्लेषण किया जाता है। जैसा कि नाम से जाहिर है, बायोस्टैटिस्टिक्स, बायोलॉजी और स्टैटिस्टिक्स से मिलकर बनी विज्ञान की एक ऐसी शाखा है, जिसने मॉलिक्युलर बायोलॉजी में रिसर्च के पूरे तरीके को ही बदल दिया है। इसकी मदद से तैयार किए गए डाटाबेस से वंशानुगत समस्याओं का अध्ययन किया जाता है ताकि उस जानकारी को मानव जीवन की बेहतरी में इस्तेमाल किया जा सके।

जीवसांख्यिकी विधियों का प्रयोग मनुष्य, वनस्पति और प्राणियों के जैव तथा शरीरक्रिया विशेषताओं, जो उनके लिये उपयोगी और अनुपयोगी दोनों ही प्रकार के हैं, के अनुसंधान के लिये व्यवहार में लाया जाता है। जीवसांख्यिकी का प्रयोग पौधों में फल उगने के विषय से लेकर दवाओं जैसे सल्फा समूह (Sulpha group) और हिस्टामिनरोधी के गुणकारी या हानिकारक प्रभावों को मालूम करने के लिये किया जाता है। जीवसांख्यिकी का उपयोग आज विशुद्ध विज्ञान जैसे वनस्पति विज्ञान, प्राणि विज्ञान, जीवाणु विज्ञान, शरीर क्रिया विज्ञान इत्यादि से लेकर व्यावहारिक विज्ञान जैसे कीट विज्ञान, जैविकी, मत्स्य विज्ञान,



अध्ययन

बायोस्टैटिस्टिक्स का उपयोग आज विशुद्ध विज्ञान जैसे वनस्पतिविज्ञान, प्राणिविज्ञान, जीवाणुविज्ञान, शरीरक्रियाविज्ञान इत्यादि से लेकर व्यावहारिक विज्ञान जैसे कीटविज्ञान, जैविकी, मत्स्यविज्ञान, उद्यानविज्ञान, शस्यविज्ञान, औषधप्रभावविज्ञान, लाक्षणिक औषधि विज्ञान, कवक से फैली बीमारियों के अध्ययन, जीवन बीमा कंपनियों के अध्ययन इत्यादि में समान रूप से हो रहा है। बायोस्टैटिस्टिक्स विधियों का प्रयोग मनुष्य, बायोस्टैटिक्स स्वास्थ्य में सुधार और बीमारी को कम करने , वनस्पति और प्राणियों के जैव तथा शरीरक्रिया विशेषताओं, जो उनके लिये उपयोगी और अनुपयोगी दोनों ही प्रकार के हैं, के अनुसंधान के लिये व्यवहार में लाया जाता है। बायोस्टैटिस्टिक्स का प्रयोग पौधों में फल उगने के विषय से लेकर दवाओं जैसे सल्फासमूह और हिस्टामिनरोधी के गुणकारी या हानिकारक प्रभावों को मालूम करने के लिये किया जाता है। बायोस्टैटिस्टिक्स का उपयोग सरकारी एवं गैर सरकारी संस्था से संबंधित अस्पतालों में आवश्यक रूप से रहते हैं।

अवसर

बायोस्टैटिस्टिक्स एक एडवांस फील्ड हैजो एमएससी या पीएच-डी में अध्ययन किया जाता है और इसमें सांख्यिकी और बायो में रुचि रखने वाले कैंडिडेट्स अधिक बेहतर कर सकते हैं। केमिकल, एग्रोकेमिकल, बायोटेक्नॉलॉजी से जुड़ी कंपनियाँ बेहतर कैंडिडेट की तलाश में रहती है। इसके अलावा, कृषि में हॉस्पिटल्स, यूनिवर्सिटी रिसर्च में भी आप मौके तलाश सकते हैं।



मुख्य विषय

बायोस्टैटिक्स का विज्ञान जैविक प्रयोगों के डिजाइन, संग्रह, विशेष रूप से दवा और संक्षेपण, और उन प्रयोगों से डेटा का विश्लेषण से संबंधित है। इस कोर्स में मुख्य मुख्य रूप से निम्नलिखित विषय शामिल है विषयों में सांख्यिकीय विज्ञान का परिचय कैलकुलस, संभावना और वितरण, इपिडेमियोलॉजी, बॉयोमैट्री, प्रयोगों के डिजाइन और नमूने में बायोस्टैटिस्टिक्स के अनुमान,समयश्रृंखला और जेनेटिक पिडेमियोलोजी, डीएनए(जीवों में आनुवांशिक स्टोर करने के लिये जानकारी), स्वास्थ्य देखभाल, स्वास्थ्य से संबंधित दवा, आदि महत्वपूर्ण हैं इसके साथ-साथ महामारी विज्ञान और सार्वजनिक स्वास्थ्य अनुसंधान पद्धति महामारी विज्ञान और जैव-सांख्यिकीय सी) वैज्ञानिक अनुसंधान का मूल्यांकन जैविकी अनुसंधान के तरीके और स्वास्थ्य डेटा प्रबंधन, एप्लाइड बहुरूपी विश्लेषण, जनसांख्यिकी और स्वास्थ्य सांख्यिकी, सांख्यिकी श्रेणी बद्ध और जीवन रक्षा डेटा विश्लेषण, कम्प्यूटर साइंस, नमूना सिद्धांत, समय श्रृंखला और सूचकांक संख्या, गुणवत्ता प्रबंधन इम्यूनोलॉजी, रेडियोआइसोटोप, माइक्रोस्कोपी, स्कैनिंग, एनएमआ रस्पेक्ट्रोस्कोपी, इन्फ्रारेड स्पेक्ट्रोफोटोमेट्री,सांख्यिकीय सॉफ्टवेयर (एसएएसऔरएसप्लस), आदि विषय को भी जानना जरूरी है।

उद्यान विज्ञान, शस्य विज्ञान, औषध प्रभाव विज्ञान, लाक्षणिक औषधि विज्ञान, कवक से फैली बीमारियों के अध्ययन, जीवन बीमा कंपनियों के अध्ययन इत्यादि में समान रूप से हो रहा है। जीवसांख्यिकी की अनेक शाखाएँ हैं। जैव जनसंख्या (प्राणियों, वनस्पतियों के जीवाणुओं) के वर्णन, वर्गीकरण, नियंत्रण, परिवर्तन परस्पर अभिक्रिया और संवेदनाएँ इत्यादि इसके मुख्य अंग हैं। जैव प्रतिक्रिया (Biological responses) का निर्धारण जीवसांख्यिकी की नई शाखा है। विटामिन परीक्षण, विषात्कता की तुलना, प्राणियों के भोजन की मात्रा संबंधी अन्वेषण, शरीर क्रिया जीवसांख्यिकी और जीवरासायनिक जीवसांख्यिकी भी इस के अंतर्गत आते हैं। जीवों के वर्गीकरण विज्ञान में जीवसांख्यिकी का सदा से विशेष महत्व रहा है। किसी जाति की आबादी निवास स्थान के अनुसार भिन्न हो सकती है अथवा दो जनसंख्याएँ किसी विशेष गुणों में परस्पर व्याप्त (Overlap) हो सकती हैं अथवा कोई आबादी अनेक जातियों का सम्मिश्रण हो सकती है।

जीवसांख्यिकी एक नया विज्ञान है, प्राणि संबंधी समस्याओं के अध्ययन में इसका आज व्यापक रूप से व्यवहार हो रहा है और उससे प्राप्त निष्कर्ष बड़े ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं। बायोस्टैटिस्टिक्स का क्षेत्र सीमित और केवल जैव वस्तुओं से संबंधित है। बायोसांख्यिकीविद् प्रथम बड़े पैमाने पर प्रेक्षण करते हैं। वे इन प्रेक्षणों को क्रमबद्ध करके इनका सारांश निकालने की चेष्टा करते हैं। इस सारांश के आधार पर प्रेक्षित जाति (species) के जीव का एक ऐसा साधारण और व्यापक वर्णन करते हैं जो उस पूरे जीवसमूह पर लागू हो। चूँकि जैव आँकड़े बहुत ही परिवर्ती होते हैं, अतएव इस विभिन्नता से उत्पन्न कठिनाइयों को सुलझाने और ठीक ठीक तर्क स्थापित करने के हेतु ही मुख्यतः बायोस्टैटिस्टिक्स विधि का विकास हुआ है। बायोस्टैटिस्टिक्स में अधिक आधुनिक प्रगति इस समस्या में निर्दिष्ट हैं कि किस प्रकार के प्रयोगों की कल्पना की जाये कि अपेक्षाकृत कम से कम प्रेक्षण के आधार पर सांख्यिकी की समस्याओं का समाधान हो सके। फिशर तथा स्नेडिकोर इन समस्याओं को, विशेषतः कृषि संबंधी प्रयोगों के क्षेत्र में सुलझाने में विशेष रूप् से सफल हुए।

मांग

आज जिस तरह के अत्याधुनिक अस्पताल, स्वास्थ्य केन्द्र व क्लीनिक्स खुल रहे हैं और हेल्थ सेक्टर का विस्तार हो रहा है, उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि बायोस्टैटिस्टिक्स विद् की मांग आगे चलकर और बढ़ेगा। वे विभिन्न अस्पतालों, अनुसंधान और विकास केंद्रों, प्रशिक्षण केन्द्रों, सरकारों और निजी एजेंसियों और विभागों, स्कूलों, कॉलेजों में जैव सांख्यिकी के क्षेत्र में सलाहकार, रिसर्च एसोसिएट्स, डॉक्टरों, सलाहकार, यूनिट प्रभारी, स्वतंत्र, अनुसंधान विश्लेषक, आदिजैसे विभिन्न पद पर काम कर सकते हैं। बायोस्टैटिस्टिक्स में एमएससी के बाद वे भारत में विभिन्न स्वास्थ्य, कृषि और फार्मा सेक्टर में प्रतिमाह 40,000-80,000/- रुपये कमा सकते हैं लेकिन अनुभव के आधार पर आमदनी में इजाफा होता रहता है,वे कई चिकित्सा वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं (एन.एच.एस. और निजी क्षेत्र) के लिए प्रयोगशालाओं में साइंटिस्ट के रूप में काम करते हैं। बायोस्टैटिस्टिक्स भले ही अध्ययन का यह क्षेत्र बिलकुल नया है लेकिन इसमें रोजगार की कोई कमी नहीं है। अतः जैव सांख्यिकी पाठ्यक्रम में कैरियर, एक अच्छी शुरुआत है। बायोस्टैटिक्स में वैज्ञानिक अनुसंधान में सांख्यिकीय तकनीकों के विकास और अनुप्रयोग होता है।

कोर्सेज

- बीएससी (जैवसांख्यिकी)-बायोस्टैटिक्स में बैचलर ऑफ साइंस अवधि तीन साल
- एमएससी (जैवसांख्यिकी) अवधि दो साल
- महामारी विज्ञान और बायोस्टैटिक्स में बैचलर ऑफ साइंस
- एमएससी महामारी विज्ञान और बायोस्टैटिक्स
- कृषि जैव सांख्यिकी में एमएससी
- बायोस्टैटिक्स में पीएच-डी

शाखा

बायोस्टैटिस्टिक्स की अनेक शाखाएँ हैं। जैव जनसंख्या (प्राणियों, वनस्पतियों के जीवाणुओं) के वर्णन, वर्गीकरण, नियंत्रण, परिवर्तन परस्पर अभिक्रिया और संवेदनाएँ इत्यादि इसके मुख्य अंग हैं। जैव प्रतिक्रिया (Biological responses) का निर्धारण बायोस्टैटिस्टिक्स की नई शाखा है। विटामिन परीक्षण, विषाक्तता की तुलना, प्राणियों के भोजन की मात्रा संबंधी अन्वेषण, शरीर क्रिया बायोस्टैटिस्टिक्स और जीवरासायनिक बायोस्टैटिस्टिक्स भी इस के अंतर्गत आते हैं। आनुवंशिक (Genetics) संभावित प्रणाली (Probabilistic Methods) और बायोस्टैटिस्टिक्स दोनों की परस्पर प्रतिक्रिया का संमिश्रण है। प्रयोग-तकनीक और परिणाम, अथवा कायिक कोशिकाओं या विषाक्तता की तुलना, सूक्ष्म जीवाणुओं पर विकिरण (Radiation) का प्रभाव ये सभी बायोस्टैटिस्टिक्स के ही अंग हैं।

मुख्य संस्थान

- श्री वैष्णो देवी यूनिवर्सिटी,बायोस्टैटिस्टिक्स विभाग, जम्मू
- गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, अमृतसर
- बायोस्टैटिस्टिक्स विभाग,क्रिश्चियन मेडिकल कॉलेज, बगायम, वेल्लोर-632002,तमिलनाडु, भारत।
- जैवसांख्यिकीविभाग, मणिपाल विश्वविद्यालय, मणिपाल-576104.
- एसडीएन भट्ट वैष्णव कॉलेज चेन्नई (तमिलनाडु)
- हिमालयन यूनिवर्सिटी, ईटानगर
- नेशनल इंस्टीच्यूट आफ फार्मास्यूटिकल एजुकेशन, मोहाली, चंडीगढ़
- सुंदरदीप ग्रुप ऑफ इंस्टीच्यूशंस, गाजियाबाद, उत्तरप्रदेश
- आल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंस, नई दिल्ली
- संजय गांधी इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंस, लखनऊ
- लेडी श्रीराम मेडिकल कॉलेज, लाजपत नगर, नई दिल्ली-29
- पटना मेडीकल कॉलेज, पटना-800004 (बिहार)
- इंद्रप्रस्थ कालेज फार वुमेन, श्यामनाथ मार्ग, दिल्ली-54
- लेडी हार्डिंग मेडीकल कालेज, दिल्ली-110051
- बायोस्टैटिस्टिक्स विभाग,आईएसआई, कोलकाता.
- पुणे विश्वविद्यालय, पुणे
- टाटा मेमोरियल अस्पताल, मुंबई
- इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ इंफॉर्मेशन टेक्नॉलॉजी, हैदराबाद
- भारतीयार यूनिवर्सिटी, कोयंबतूर
- हिमालयन यूनिवर्सिटी, ईटानगर
- डिब्रूगढ़ यूनिवर्सिटी, डिब्रूगढ़
- मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई
- आचार्य एन.जी. रंगा कृषि विश्वविद्यालय, (एएनजीआरएयू), हैदराबाद, आंध्रप्रदेश
- कृषि विश्वविद्यालय, उदयपुर
- चित्कारा यूनिवर्सिटी, बरोटीवाला
- अर्नी यूनिवर्सिटी, काठगढ़, इंदौरा, कांगड़ा
- महर्षि मार्कंडेश्वर यूनिवर्सिटी, सोलन।

goswamisanjay80@yahoo.com

योग्यता

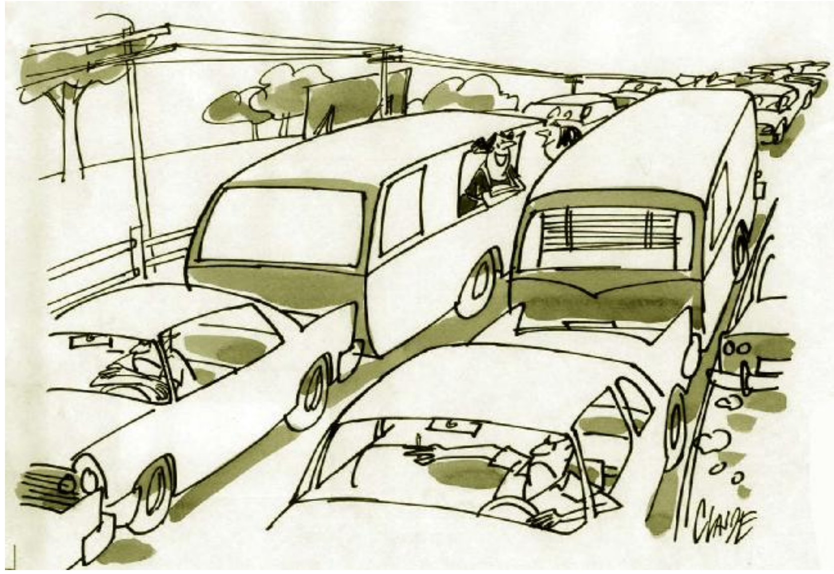
कोर्स इस क्षेत्र में कॅरियर बनाने के लिए बीएससी इनबायोस्टैटिस्टिक्स में दाखिला ले जा सकते हैं जिसकी अवधि तीन वर्ष है। बायोस्टैटिस्टिक्स में डिग्री अथवा डिप्लोमा कोर्स करने के लिए अभ्यर्थी को फिजिक्स, केमिस्ट्री, सांख्यिकी गणित या बायोलॉजी के साथ 12वीं या इसके समकक्ष परीक्षा उत्तीर्ण होना चाहिए। इन दिनों ज्यादातर शिक्षण संस्थानों में साइंस की बायोस्टैटिस्टिक्स शाखा के तहत ही बायोस्टैटिस्टिक्स की पढ़ाई होती है। कुछ प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों और कॉलेज प्रवेश के लिए प्रवेश परीक्षा आयोजित करते हैं। देश में कुछ खास शिक्षण संस्थान हैं, जहाँ इस विषय की पढ़ाई एक नए डिसिप्लीन के तौर पर हो रही है। बीएससी (बायोस्टैटिस्टिक्स) पास करने के बाद उम्मीदवार एमएससी (बायोस्टैटिस्टिक्स) कर सकते हैं और एमएससी के बाद वे पीएच-डी कर सकते हैं।

आय

इस फील्ड में पीजी के बाद प्राइवेट सेक्टर में आप 30,000 रुपए की मासिक सैलरी से शुरुआत कर सकते हैं। शुरुआती स्तर पर जैव सांख्यिकीविद के रूप में कार्य शुरु करने वाले व्यक्ति को भी तीस से पचास हजार रुपए प्रति माह की नौकरी आसानी से मिल जाती है। सरकारी क्षेत्र में पे-पैकेज प्राइवेट सेक्टर के मुकाबले कम है। हालांकि रिसर्च करने के लिए अच्छे पैकेजेस दिए जाते हैं। आप फार्मास्यूटिकल और बायोटेक कंपनीज में सीक्वेंस एसेंबली, डाटाबेस डिजाइन एंड मेंटेनेंस, सीक्वेंस एनालिसिस, प्रोटिओमिक्स, फार्माकोजिनॉमिक्स, फार्माकोलॉजी, क्लीनिकल फार्माकोलॉजी, इन्फॉर्मेटिक्स डेवेलमेंट, कम्प्यूटेशनल केमिस्ट्री, बायो एनालिटिक्स या एनालिटिक्स के क्षेत्र में काम कर सकते हैं।

विज्ञान कथा

बैलों वाली कार



डॉ. अरविंद दुबे



डॉ.अरविंद दुबे विगत चार दशकों से विज्ञान लेखन कर रहे हैं। आपने किंग जार्ज मेडीकल कॉलेज, लखनऊ से एमबीबीएस और बाद में डीसीएच तथा एमडी की उपाधि प्राप्त की। संचार भारती के दृश्य-श्रव्य माध्यमों के लिए आपने कई डाक्यूमेंट्री, विज्ञान वार्ताएँ, विज्ञान नाटक, विज्ञान धारावाहिक आदि का लेखन किया जिसके लिए आपको कई महत्वपूर्ण सम्मानों से सम्मानित किया गया। अब तक हिन्दी और अंग्रेजी में आपकी छह पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

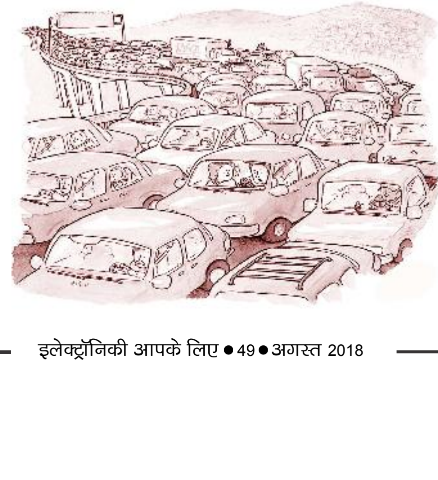
वह एक सामान्य शहर था, आदमियों से खचाखच भरा। बत्तीसवीं सदी का शहर। जनसंख्या नियंत्रित थी क्योंकि लोग बढ़ती जनसंख्या के बुरे असर से बुरी तरह प्रभावित हो चुके थे। अब तक जनसंख्या इतनी बढ़ चुकी थी कि पानी से बाहर बची धरती के दो तिहाई हिस्से पर इंसान रहते थे। बची एक तिहाई भूमि का करीब आधा भाग धरती का तापक्रम बढ़ने से और मिट्टी के रासायनिक प्रदूषण से कुछ भी उपजाने लायक नहीं बचा था। खाने की चीज़ों की मारा-मारी होने लगी थी। हालाँकि उन्होंने शरीर को स्वस्थ बनाये रखने के लिय प्रयोगशाला में कृत्रिम तरीके से बनाई गयी विटामिंस और पोषक तत्वों की बनी गोलियाँ ईजाद कर लीं थीं। इन ''लाइफ टैब्स'' से शरीर तो स्वस्थ रहता था, भूख मिट जाती थी पर जीभ के स्वाद का इनसे कोई नाता नहीं था। वह तो सचमुच के भोजन से ही मिलता था। परंपरागत चीज़ों जैसे रोटी, चावल, दाल, सब्जी, मिर्च, मसाले वाला भोजन एक तरह की विलासिता माना जाता था जिसे काफी धनवान लोग ही खा सकते थे या कभी-कभी फिजूलखर्ची करके पार्टियों में मध्यमवर्गीय लोग भी खाते थे। गरीब लोगों को तो इन बिना स्वाद वाली, हर जगह उपलब्ध ''लाइफ टैब्स'' को ही निगलकर जिंदा रहना पड़ता था।

यातायात की स्थिति तो और भी खराब थी। अब से करीब एक हजार साल पहले इक्कीसवीं-बाईसवीं सदी के लोगों में वाहनों की ऐसी होड़ बढ़ी थी कि एक वाहन क्रांति की शुरूआत हो गई थी। वाहनों के बाजार में एक घमासान शुरू हो गया था। एक से बढ़कर एक विशेषताओं वाले दोपहिए और चौपहिए वाहन तैयार किए जाने लगे थे। जो वाहन जितने कम पेट्रोल या डीजल की खपत करता उसकी मांग उतनी ही ज्यादा होती थी। वाहन निर्माताओं में इसकी होड़ लगी थी कोई वाहन एक लीटर पेट्रोल में 120 किलोमीटर चलता तो कुछ 'स्निफ एंड रन' श्रेणी के वाहन तो एक लीटर पेट्रोल में तीन सौ किलोमीटर तक चलते थे। खरीदने की शर्तें इतनी सरल थीं कि आपकी जेब में सिर्फ एक रूपये हो तो वाहन विक्रेता के पास चले जाइए, कुछ फार्म भरिये और चमचमाता वाहन लेकर लौटिए। चौपहिया वाहन के लिय आपके पास महज एक हजार रूपये होने चाहिए और फिर बाकी का पैसा सहूलियत से छोटी-छोटी आसान किश्तों में चुकाते रहिए। सिर्फ एक फोन घुमाइये और वाहन विक्रेता के लोग आपके घर पर आकर आपको वाहन दे जाएंगे। दस रूपये रोज़ की किश्तों पर कार मिल सकती थी, तीन रूपये रोज की किश्त पर मोटरसाइकिल और दो

रूपये रोज की किश्त पर मोपेड मिल जाती थी। साइकिलें तो गुज़रे ज़माने की चीज हो गईं थीं। ज्यादातर साइकिल बनाने वाली कंपनियाँ या तो बंद हो गईं थीं या फिर उन्होंने दोपहिया वाहनों का निर्माण शुरू कर दिया था। हर आम और खास आदमी के हाथों में वाहन देने की, वाहन निर्माताओं की योजनाएं फल-फूल रहीं थीं। क्लर्क से लेकर फेरी लगाने वाले तक, मज़दूर से लेकर भीख मांगने वाले तक हर एक के पास अपना कम से कम एक स्वचालित वाहन जरूर था। कुछ लोगों के घरों में तो प्रति व्यक्ति चार से छह चौपहिया और एक, दो पहिया वाहन तक थे। सड़कें, यहाँ तक कि मोहल्लों की गलियाँ तक इन ईंधन चालित वाहनों से पटने लगीं थीं। यातायात में लगने वाले 'जाम' हर शहर व गाँव तथा बस्ती की सड़क पर सब आम हो गय थे। लोगों के पास वाहन खड़े करने तक की जगह न थी। धनवान लोगों ने तो कई तल्लों वाले गैराज बनवा लिय थे पर मध्यम वर्गीय लोगों के वाहन सड़कों पर बेतरतीब, घरों के सामने खड़े रहते थे या फिर बाज़ारों में मोटी रस्सियों के सहारे दीवारों पर टंगे रहते थे। दिन या रात के किसी भी समय सड़कों पर वाहनों की संख्या इतनी अधिक होती थी कि चौराहों पर घंटों खड़े रहना पड़ता था। लोग घंटों लाग जाम में फंसे रहते थे। रेडियो पर सड़कों पर के ऐसे जामों की सूचनाएं प्रसारित की जातीं थीं ताकि लोग उधर से होकर न जाएं। फिर भी लोगों को छोटे-छोटे फासले तय करने में कभी-कभी काफी समय लग जाता। लोग रेल या बस पकड़ने जाते समय वहाँ तक पहुँचने के समय में जाम में लगने वाले समय की संभावना को ध्यान में रखकर काफी जल्दी घर से निकलते थे।

ऑफिस छूटने के समय तो वाहनों से निकलने वाला धुआं अपने चरम पर होता था। चौराहों पर धुएं के काले बादल मंडराते थे। ऐसे समय में लोगों को सांस लेने में दिक्कत होने लगती थी। ज्यादातर लोग सड़क पर चलते समय मास्क पहनते थे। फिर भी धुएं से उनकी आँखों में जलन होती थी, उनका दम घुटता था। हर घर में चार में से तीन लोग खांसी या दमे का शिकार थे।

इतना होने पर भी लोगों में रोज नये-नये वाहन खरीदने की होड़ जारी थी। जिसके पास जितने वाहन होते, वह उतना ही इज्जतदार और धनी माना जाता था। ये चलन सिर्फ भारत में ही नहीं दुनिया भर में था। वाहनों के क्षेत्र में हो रही इस हलचल से कुछ मुट्ठी भर लोग बड़े परेशान थे। ये पर्यावरण की फिक्र करने वाले और ऊर्जा के परंपरागत संसाधनों के लगातार खत्म होने की फिक्र करने वाले लोग थे।



पेट्रोलियम की कीमतें आसमान छू रहीं थीं। पर इन आसमान छूती कीमतों का वाहनों की खरीद-फरोख्त पर कोई असर



नहीं था। पेट्रोलियम की कीमत जितनी बढ़ती थी, लोगों में दोपहिया और चारपहिया वाहन खरीदने की ललक उससे चौगुनी बढ़ती जाती थी। जिनके पास दोपहिया वाहन होते थे वे किसी प्रकार जुगत करके चौपहिया वाहन लेने की सोचते थे, जिनके पास पुराना चौपहिया वाहन होता था वे एक नया चौपहिया वाहन और लेने की कोशिश में रहते थे। पृथ्वी में पेट्रोलियम के भंडार तेजी से कम हो रहे थे। विश्व की राजनीति पेट्रोलियम के चारों ओर घूमने लगी थी। जिस देश के पास पेट्रोलियम का जितना बड़ा भंडार होता था उसे उतना ही शक्तिशाली और समृद्ध माना जाता था, विश्व के सारे प्रमुख संगठनों में उसका उतना ही अधिक दबदबा रहता था। बिना पेट्रोलियम वाले देश एक तरह से उनके सामने हाथ फैलाते रहते थे... उनकी जी-हुजूरी करते थे... गाहे-बगाहे उनकी गलत माँगों के सामने सिर भी झुकाते थे। पेट्रोलियम के बड़े भंडारों वाले देश अकसर मनमानी पर उतर आते थे। थोड़े-थोड़े समय पर पेट्रोलियम और क्रूड ऑयल के दाम बढ़ा देते थे। बिना पेट्रोलियम वाले देशों के सामने और कोई चारा नहीं होता था। वे इन 'पेट्रो राष्ट्रों' की बढ़ी हुईं कीमतों पर पेट्रोलियम और क्रूड ऑयल खरीदने को मजबूर होते थे। दुनिया भर के वैज्ञानिक, डॉक्टर, इंजीनियर, तक्नीशियन अपनी-अपनी पढ़ाई पूरी करते ही ऐसे पेट्रो राष्ट्रों की ओर भागते थे क्योंकि उन्हें मालूम था कि वर्तमान इन्हीं का है। आर्थिक सम्पन्नता इन्हीं के पास है।

इस सब के बीच में ही कहीं पेट्रोलियम से जुड़े अपराध भी धीरे-धीरे अस्तित्व में आने लगे थे। ये अपराध व्यक्तिगत स्तर पर थे, प्रांतों के स्तर पर थे तो राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी थे। पेट्रोलियम से भरे ट्रक कड़ी सुरक्षा के बीच लाये जाते थे फिर भी लूट-पाट की घटनाएं हो ही जातीं थीं। दो देशों के युद्ध में अब सेना शत्रु सेनाओं की रसद पर ही नहीं वरन् उनकी पेट्रोलियम सप्लाई पर भी हमला करती थी। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी

पेट्रोलियम अपराध तेजी से पनप रहे थे। विकसित और बलवान देश कमजोर 'पेट्रो राष्ट्रों' पर हमला करके उन पर अधिकार करने की कोशिश करते थे। तभी उस पेट्रो राष्ट्र की सहानुभूति पाने की गरज से बिना, मांगे ही बिना पेट्रोलियम वाले देश उसकी मदद को जुट जाते थे। विश्वयुद्ध के से हालात बन जाते थे फिर मानवता की अस्तित्व रक्षा के नाम पर दुनिया को विश्वयुद्ध से बचाने के नाटक होते थे। हमलावर और सहायता करने वाले देशों के बीच समझौता होता था और दोनों मिलकर उस छोटे पेट्रो देश को हथिया लेते थे। किसी पेट्रो राष्ट्र को इस तरह बेइमानी से... जोर जबरदस्ती के बल पर हथियाने को एक सुंदर सा नाम दिया गया था 'अधिग्रहण'। अगर कभी कोई पेट्रो राष्ट्र इस प्रकार के 'अधिग्रहण' का विरोध करता था या उनके खिलाफ उठ खड़ा होता था तो भयंकर लड़ाइयां होतीं थीं। हजारों जानें जातीं थीं। उस राष्ट्र के तेल के कुओं में आग लगा दी जाती थी। कभी-कभी तो वे पेट्रो राष्ट्र खिसिया कर खुद ही अपने तेल के कुओं में आग लगाकर ''जौहर'' का परिचय दे देते थे। जब कभी दो पेट्रो राष्ट्र किसी मसले पर आपस में लड़ बैठते थे तो कोई न कोई विकसित और बलवान राष्ट्र उनके झगड़े में जरूर कूद पड़ता था जिसका अंत कभी सिर्फ विपक्षी या कभी-कभी दोनों देशों के तेल भंडारों के 'अधिग्रहण' में होता था।



लोग गैर-परंपरागत ईंधनों के व्यवहारिक उपयोग के लिये फिक्रमंद थे। इन पर बड़े-बड़े सेमिनार होते थे। विकसित देशों की सरकारें इन शोधों पर अरबों रूपये प्रतिवर्ष खर्च करतीं थीं। वैज्ञानिकों ने सूरज की ऊर्जा से वाहन चलाने के प्रयास किये, बिजली से बैटरियाँ चार्ज करके विद्युत कारें और विद्युत बाइक चलाने के प्रयास किय। कुछ वैज्ञानिकों ने पानी को पेट्रोल और डीज़ल के स्थान पर वाहनों में प्रयोग करके देखा तो कहीं कुछ वनस्पतिक तेलों को वाहनों में ईंधन की तरह प्रयोग किया गया। कुछ प्रयोगशालाओं में लोग गोबर गैस आदि को वाहनों में ईंधन की तरह प्रयोग करने की संभावनायें तलाश रहे थे। पर इन सारे प्रयोगों मे से किसी में भी कोई ऐसी गुंजाइश नहीं दिखी थी कि भविष्य में व्यवहारिक रूप से पेट्रोलियम ईंधन का स्थान ले सकेगा। एक बार गोबर गैस के प्रयोग से इसमें उम्मीद की एक किरण जागी थी पर अब वह भी व्यवहारिक नहीं रह गई थी। जानवर उन दिनों केवल लाइफ टैब्स पर ही पाले जाते थे जिनसे इतना गोबर ही नहीं मिलता था जिसे पेट्रोलियम के विकल्प के रूप में देखा जा सके।



एक दिन वही हुआ जिसका सबको अंदेशा बरसों से था। पेट्रोलियम के भंडार समाप्त हो गये। वाहनों की बढ़ती भीड़ ने धरती का सारा पेट्रोलियम चूस लिया था। वैज्ञानिक बिरादरी पहले ही पेट्रोलियम की खोज में धरती का चप्पा-चप्पा तलाश चुकी थी। समुद्रों का इंच-इंच खंगाल चुकी थी। इस दौरान जो पेट्रोलियम के इक्का-दुक्का छोटे-छोटे भंडार मिले थे, उन्हें उन देशों की सरकारों ने आपातकालीन रिज़र्व भंडार घोषित कर दिया था। अपने इन आपातकालीन पेट्रोलियम भंडारों की सारे राष्ट्र बड़ी तन्मयता से कड़ी सुरक्षा करते थे। इनके बारे में पूरी गोपनियता बरती जाती थी। सब जानते थे कि अगर विश्व युद्ध हुआ तो पेट्रोलियम के भंडार उनमें निर्णायक भूमिका निभायंगे और यही दुश्मन के आक्रमण का पहला निशाना होंगे।

जन सामान्य के लिय पेट्रोलियम के उपयोग पर रोक लगा दी गई थी। जन सामान्य द्वारा किसी भी रूप में पेट्रोलियम का प्रयोग अपराध घोषित कर दिया गया था। धुआं उड़ाती मानवता का चक्का जाम हो गया था। चोरी-चुपके भंडार किया 'ब्लैक' का पेट्रोल आखिर कब तक चलता? सारे वाहन धीरे-धीरे सिर्फ गैराजों की शोभा बनकर रह गय। जब उन्हें चलाने के लिय ईंधन ही नहीं तो वाहनों का क्या होता? वाहन निर्माता कम्पनियाँ धड़ा-धड़ बंद होने लगीं थीं और ज्यादातर तो साइकिलों के निर्माण के क्षेत्र में उतर आईं। तभी कुछ लोगों ने स्थानीय स्तर पर इन वाहनों के साथ अनूठे प्रयोग करने शुरु कर दिय थे। वे अपने पुराने वाहनों, खासकर चौपहिया वाहनों में जानवरों को जोतने लगे। लोग इसमें तेज दौड़ने वाले जानवर भी जोतने लगे थे जैसे कि घोड़े, बैल, ऊँट आदि। भारत में व्यवहारिक रूप से बैलों को इस कार्य के लिये सबसे उपयुक्त और किफायती पाया गया। इसमें एक रस्सी या लोहे की छड़ की सहायता से कार के आगे दो बैल जोते जाते थे और कार में लोग बैठते थे। बैल इस कार को खींचते थे। कार के आगे का शीशा या 'विंडस्क्रीन' हटा दिया जाता था ताकि लोग कार के अंदर बैठे-बैठे ही बैलों की रस्सें पकड़ कर वहीं से बैलों को नियंत्रित कर सकें। इस स्थानीय आविष्कार को लोग 'बुलौक कार' या 'बैलों वाली कार' कहते थे। ये बीसवीं शताब्दी में प्रचलित बैलगाड़ी का संशोधित संस्करण मालूम देता था। धीरे-धीरे बहुत सारी बंद पड़ी चौपहिया वाहन निर्माता कंपनियाँ इस धंधे में आ गईं। 'बुलौक कार' में नये-नये प्रयोग किय जाने लगे थे। अब चौपहिया वाहन निर्माता कंपनियाँ कार भी सप्लाई करती और इसमें जुतने वाले बैल भी। इसमें जुतने वाले बैलों को चारा आदि देने की जरूरत

नहीं थी। वैसे भी जानवरों का चारा जैसी फालतू की चीज उगाने के लिय उस बत्तीसवीं शताब्दी में जमीन कहां मिलती जबकि इंसानों के भोजन की जरूरी चीजें उगाने भर की जमीन ही नहीं बची थी। इन जानवरों को भी भोजन के रूप में प्रयोगशालाओं में विकसित की गई विटामिन और पोषक तत्वों के 'कंसन्ट्रेट' से बनी 'लाइफ टैब्स' खिला कर ही पाला जाता था जो आसानी से हर जगह उपलब्ध थे। इन बैलों या जानवरों के मस्तिष्क में एक छोटे से आपरेशन के जरिए एक कम्प्यूटर माइक्रोचिप फिट कर दी जाती थी। कार के अंदर भी एक कम्प्यूटर लगा होता था। इस कम्प्यूटर से सिग्नल भेजकर कार में बैठे-बैठे ही उन बैलों के मस्तिष्क में लगी माइक्रोचिप की सहायता से उन्हें तेज चलने, धीमे चलने, रूकने, दायें या बॉयें मुड़ने के निर्देश दिये जाते थे जिनका वे सही-सही पालन करते थे। पर इस माइक्रोचिप का उनके पूरे मस्तिष्क पर नियंत्रण नहीं था। फिर भी वह थे तो जानवर ही, वे कभी-कभी इस मिनी कम्प्यूटर के आदेशों को झुठला जाते थे। ऐसे में बैलों को वापस कम्पनी भेजना होता जहाँ या तो उनकी कम्प्यूटर माइक्रोचिप बदल दी जाती थी या फिर बैलों की नई जोड़ी ही सप्लाई कर दी जाती थी। ये बैलों वाली कारें, अब खूब प्रयुक्त होने लगीं थीं पर ये धनवानों तक ही सीमित थीं। आम आदमी में प्रचलित वाहन थी साईकिल-पैरों से चलाई जाने वाली या फिर विकलांगों द्वारा हाथों से चलाई जाने वाली साईकिल। लोग अब लंबी यात्राएं कम ही करते थे। नाव यात्रा अब काफी विकसित होने लगी थी। पेट्रोलियम की समाप्ति ने लोगों के विकास के क्रम को पीछे की ओर, उल्टे पांव चलने को मजबूर कर दिया था।



राजू आज ऐसी ही एक बैलों वाली कार से अपने पिता के साथ अपने हॉस्टल से वार्षिक छुट्टी में घर लौट रहा था। सड़क थोड़ी खराब थी इसलिये उन्होंने कार में मिनी कम्प्यूटर के जरिए बैलों को मध्यम गति से चलने के आदेश दे दिय थे। अचानक न जाने क्या हुआ? कार में जुते बैल भड़क उठे। इस ऊबड़-खाबड़ सड़क पर वे बैलों वाली कार लेकर सरपट दौड़ने लगे। राजू के पिता कार में मिनी कम्प्यूटर से जितना उन्हें नियंत्रित करने के आदेश देते तो वे उतना ही सरपट भागते। कार उलटने-उलटने को हो जाती। राजू के पिता के माथे पर पसीना चुहचुहाने लगा। राजू भी परेशान था। उसने घबराकर पूछा- 'पापा यह सब क्या हो रहा है?'

''मैं खुद भी नहीं समझ पा रहा हूँ बेटे। कम्प्यूटर से कोई भी आदेश दो, कोई सिग्नल दो बस बैल भड़क कर भागना शुरू कर देते हैं। लगता है बैलों के मस्तिष्क में फिट माइक्रोचिप से सिग्नल लीक होने लगे हैं जिससे चिप के चारों ओर का उनका मस्तिष्क इन अनावश्यक सिग्नलों को ग्रहण करने लगा है।''

''पर ऐसा क्यों पापा'', राजू काफी घबरा रहा था।

''माइक्रोचिप के आसपास के मस्तिष्क के ऊतकों में इंफेक्शन होने या सूजन होने से ऐसा हो जाता है और वे सामान्यतः माइक्रोचिप से निकलने वाले वीक सिग्नल, जिन्हें स्वस्थ दशा में वे जान भी नहीं पाते, को ग्रहण करने लगते हैं। इसलिए हमारे हर कमांड पर उनके मस्तिष्क के इस सूजे भाग को यक बिजली का सा झटका लगता है और वे बिलबिलाकर दौड़ना शुरू कर देते हैं।''

''अब क्या होगा पापा?''

''यही मैं भी सोच रहा हूँ बेटे। जब कार के निर्माता हमें बैल सप्लाई करते हैं तो वे दोनों बैलों के मस्तिष्क में फिट इन ''माइक्रोचिप'' को पूरी तरह सिन्क्रोनाइज़ करते हैं ताकि हमारे मिनी कम्प्यूटर पर दिये गये एक कमांड को दोनों बैल एक ही तरह समझें।''

''पर अब पापा?''

''राजू बेटे लगता है कि एक बैल के माइक्रोचिप के आसपास के मस्तिष्क के ऊतकों में इंफेक्शन होने से वह सिंक्रोनाइजेशन समाप्त हो रहा है।''

''इसका मतलब पापा?''

''इसका मतलब यह कि हमारे सिग्नल को एक स्वस्थ बैल एक तरह से ग्रहण कर रहा है और इनफेक्टेड मस्तिष्क वाला बैल दूसरी तरह से।''

''यह तो बहुत खतरनाक होगा पापा, एक बैल दौड़ना चाहेगा तो दूसरा धीमे चलेगा, एक दायें जायेगा तो दूसरा बायें... यानि की हमारी कार कभी भी पलट सकती है?

''हाँ'', पापा ने चिंतित स्वर में कहा।

''पापा अगर हम बैलों को कोई भी सिग्नल न दें तो?''

'' राजू मैं ऐसा कर रहा हूँ, पर इनफेक्टेड बायें बैल की माइक्रोचिप से सिग्नल लीक होना रूक ही नहीं रहा है।''

''हे भगवान अब क्या होगा?''

''पता नहीं पर मैं कोशिश करूंगा... अंत तक कोशिश करूंगा।''

''पर कैसे पापा?''

''सोचता हूँ कार के बोनट तक किसी तरह पहुँच जाऊँ और बैलों को कार से जोड़ने वाली रॉड को काट दूँ।''

''पर ऐसी उछलती, सरपट दौड़ती कार में पापा... नहीं पापा बहुत खतरनाक है यह... नहीं पापा, नहीं...।''

''नहीं बेटे मुझे ऐसा करना होगा। मैं तुम्हारा पापा हूँ न। यकीन करो मुझे कुछ नहीं होगा।''



राजू के पापा ने उस तेज और धक्के खाती कार का दरवाज़ा खोला फिर वे खिसक कर कार के बोनट की ओर बढ़े। तभी कार यक खड्डे में जा गिरी और उलट गई। राजू तेजी से चिल्लाया, ''पापा''

''क्या हुआ बेटे'', पापा राजू के ऊपर झुके उसका सिर सहला रहे थे।

''...''

''क्या हुआ, क्या कोई बुरा सपना देखा'', पापा पूछ रहे थे।

राजू ने धीरे-धीरे आँखें खोली। सामने पापा थे। वह पापा से लिपट गया ''पापा आप ठीक तो हैं न?''

''हाँ बेटे मैं बिलकुल ठीक हूँ पर तुझे क्या हुआ है?

''पर पापा, वह बैल... वह बैलों वाली कार... वह दुर्घटना...।''

''ओहो! तो जनाब ने आज फिर कोई बुरा सपना देखा। कितनी बार तुमसे कहा है कि सोते समय उल्टे-सीधे कॉमिक्स न पढ़ा करो। तो क्या देखा आपने आज के इस सपने में?''

राजू ने अपने पिता को अपने सपने के बारे में पूरी कहानी सुनाई। कहानी खत्म होते-होते राजू के पिता ने राजू के दोनों हाथ अपने हाथों में ले लिए।

''पापा मुझे तो यकीन ही नहीं आ रहा है कि ये सब सिर्फ एक सपना था'', राजू कह रहा था।

''सच कहते हो राजू सचमुच ये सपना नहीं था। तुमने बंद आँखों से हमारा आने वाला कल देखा है... ऊर्जा के संसाधनों के साथ जो अति हम आज कर रहे हैं उसका दुष्परिणाम देखा है... शायद प्रकृति तुम्हारे सपने के माध्यम से हमें चेतावनी दे रही है'', पापा कहीं दूर देख रहे थे।

''मैं समझा नहीं, क्या कह रहे हैं आप?''

''राजू जिस रफ्तार से ये दोपहिये और चौपहिये वाहन बढ़ रहे हैं, अगर यही रफ्तार जारी रही तो क्या होगा? कहाँ से आयेगा उनके लिय इतना पेट्रोल, इतना डीजल?''

''...''

''हमें थोड़ी दूर जाना हो तो क्या जरूरी है कि हम बाइक से ही जाए...... ......कार से जाए? साइकिल पर भी जा सकते हैं। जैसे कि तुम अपने स्कूल।''

''समझा पापा, समझा, इससे पेट्रोल बचेगा और कसरत भी होगी।''

''हाँ, आज लोग कार से जाते भी हैं तो हर कार में सिर्फ एक आदमी। ऐसा भी तो किया जा सकता है कि एक ही जगह जाने वाले ऐसे पाँच-छः लोग बारी-बारी से किसी एक की कार में एक साथ जाए। लोग कार और मोटर साइकिल पर हवाखोरी और टहलने के लिय निकलते हैं। अरे ये कैसी हवाखोरी, टहलना हो तो पैदल जाओ।''

''मैं तो पापा अब साइकिल से ही स्कूल जाया करूंगा। हॉस्टल से स्कूल है ही कितनी दूर'', राजू ने उत्साहित होकर कहा।

''और क्या, साइकिल चलाना कोई शर्म की बात तो है नहीं। चीन में तो अस्सी प्रतिशत लोग साइकिल का ही प्रयोग करते हैं'', पापा ने जानकारी दी।

''इससे तो पेट्रोलियम की कितनी सारी बचत होगी, है न पापा?''

''हाँ आज लोगों को मालूम है कि 'जेट्रोफा' जैसे पौधों से वाहनों में प्रयोग किया जाने वाला डीजल बनाया जा सकता है पर आम आदमी की तो इसमें रूचि ही नहीं। अगर ये चीजें हमारी रोजमर्रा की जिंदगी में प्रवेश न पा सकी तो न जाने कल क्या होगा'', पापा ने गहरी साँस ली।

''मैं बताऊँ पापा, बैलों वाली कार होगी पापा बैलों वाली कार'', राजू ने कहा और दोनों खिलखिला कर हँस पड़े।

drarvinddubey2004@gmail.com

भविष्य के लिए ऊर्जा

इरफान ह्यूमन





डॉ. इरफान ह्यूमन विगत पच्चीस वर्षों से 'साइंस न्यूज एण्ड व्यूज़' मासिक विज्ञान पत्रिका का संपादन व प्रकाशन कर रहे हैं। आप विज्ञान लोकप्रियकरण कार्यक्रमों के माध्यम से देशभर में वैज्ञानिक जागरुकता के लिए प्रयासरत हैं। आपके एक हजार से अधिक लेख प्रकाशित हुए हैं, आकाशवाणी से अनेक विज्ञानवार्ताओं का प्रसारण हुआ है, विज्ञान धारावाहिक लेखन तथा विज्ञान डाक्यूमेंट्री फिल्मों के निर्माण में आपका बड़ा योगदान है। मुंबई में साइंस फिल्म फेस्टिवल आपकी फिल्में प्रदर्शित हुई हैं। विज्ञान लेखन तथा विज्ञान लोकप्रियकरण के लिए आपको कई सम्मान प्राप्त हैं तथा कई वैज्ञानिक संस्थाओं के मानद हैं। वर्तमान में आप शाहजहाँपुर उ.प्र. में निवासरत हैं।

20 अगस्त को भारत में अक्षय ऊर्जा दिवस (Renewable energy day) मनाया जाता है। आज अक्षय ऊर्जा या नवीकरणीय ऊर्जा के विकास की असीम सम्भावनाएं हैं। परंपरागत ऊर्जा के साधन जैसे कोयला, गैस, पेट्रोलियम सीमित हैं, ऐसे में हमें सौर, पवन, जल-विद्युत, बायोमास, जैव ईंधन जैसे अक्षय ऊर्जा के स्त्रोतों का उपयोग करना चाहिए और याद रखना चाहिए कि अक्षय ऊर्जा भविष्य की ज़रूरत है, इससे सतत् विकास को गति मिलेगी। देश की राज्य सरकारें इस क्षेत्र में निवेश को लेकर प्रोत्साहन दे रही हैं, इसी का परिणाम है कि आज कई प्रदेश सौर ऊर्जा के क्षेत्र में कीर्तिमान बना रहे हैं। अक्षय उर्जा में वे सारी उर्जा शामिल हैं जो प्रदूषण कारक नहीं हैं तथा जिनके स्रोत का क्षय नहीं होता, या जिनके स्रोत का पुनः भरण होता रहता है। सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जलविद्युत उर्जा, ज्वार-भाटा से प्राप्त उर्जा, बायोमास, जैव इंधन आदि नवीनीकरणीय उर्जा इसके कुछ उदाहरण हैं।

वर्तमान में भारत उन गिने-चुने देशों में शामिल हो गया है, जिन्होंने वर्ष 1973 से ही नए तथा पुर्नोपयोगी ऊर्जा स्रोतों का उपयोग करने के लिए अनुसंधान और विकास कार्य आरंभ कर दिए थे। परन्तु, एक स्थायी ऊर्जा आधार के निर्माण में पुर्नोपयोगी ऊर्जा या गैर-परंपरागत ऊर्जा स्रोतों के उपयोग के उत्तरोत्तर बढ़ते महत्व को तेल संकट के तत्काल बाद 1970 के दशक के आरंभ में पहचाना जा सका। देश का अपारम्परिक ऊर्जा कार्यक्रम विश्व के इस प्रकार के विशालतम कार्यक्रमों में से एक है। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रौद्योगिकी, बायोगैस, समुन्नत चूल्हे, बायोमास बमचपा गैसीफायर, शीघ्र बढ़ने वाली वृक्ष-प्रजातियां, जैवीय पदार्थ का दहन, पवन- चक्कियों द्वारा जल निकासी, वायु टर्बाइनों द्वारा शक्ति का उत्पादन, सौर तापीय व फोटो वोल्टायिक प्रणालियाँ, नागरीय घरेलू तथा औद्योगिक अवजल व कचरे से ऊर्जा उत्पादन, हाइड्रोजन ऊर्जा, समुद्री ऊर्जा, विद्युत चालित वाहन व परिवहन के लिए वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों पर कार्य हो रहा है।

यदि अक्षय ऊर्जा की बात की जाए तो इसमें सौर ऊर्जा की महत्वपूर्ण भूमिका है। सूर्य ऊर्जा का सर्वाधिक व्यापक एवं अपरिमित स्रोत है, जो वातावरण में फोटॉन के रूप में विकिरण से ऊर्जा का संचार करता है और सूर्य से फ़िलहाल हमें हमेशा ऊर्जा मिलती रहेगी। भारत को प्रतिवर्ष पाँच हजार ट्रिलियन किलोवाट/घंटा के बराबर ऊर्जा मिलती है। प्रतिदिन का औसत भौगोलिक स्थिति के अनुसार चार से सात किलोवाट घंटा प्रति वर्ग मीटर है। वैश्विक सौर रेडिएशन का वार्षिक प्रतिशत भारत में प्रतिदिन 5.5 किलोवाट घंटा प्रति वर्ग मीटर है। गौरतलब है कि उच्चतम वार्षिक रेडिएशन लद्दाख, पश्चिमी राजस्थान एवं गुजरात में और निम्नतम रेडिएशन पूर्वोत्तर क्षेत्रों में प्राप्त होता है। चूंकि मानव सौर ऊर्जा का उपयोग अनेक कार्यों में करता है इसलिए इसका व्यावहारिक उपयोग करने के लिए सौर ऊर्जा को अधिकाधिक क्षेत्र से एकत्र करने या दोनों की प्राप्ति हेतु उचित साधन आवश्यक होते हैं। इसलिए इसके दोहन हेतु कुछ युक्तियां उपयोग में लाई जाती

सौर ऊर्जा प्रणाली को अनिवार्य बनाने के लिए इमारत उपनियमों में संशोधन किया गया है एवं प्रावधान किया गया है कि ऐसी इमारतें और हाउसिंग परिसर बनाए जाएं जहाँ पानी गर्म करने के लिए सौर ऊर्जा का इस्तेमाल हो। परंपरागत बिजली संरक्षण के साथ सर्दियों और गर्मियों में आरामदायक और बेहतर जीवन-स्तर के लिए ऐसी इमारतों के निर्माण को बढ़ावा दिया जा रहा है जिनमें सौर ऊर्जा से जुड़ी प्रणालियों को लगाया जा सके।

प्रकाश-वोल्टीय सेल या सौर सेल। भारत सरकार के ऊर्जा मंत्रालय ने छोटे स्थल पर उपयोग के लिए 25 एवं 100 किलोवाट की दो सौर फोटोवोल्टाइक ऊर्जा परियोजनाओं की स्थापना की है। जो बड़े शहरी केन्द्रों में व्यस्त समय में भार की बचत करने के प्रदर्शन के लिए सार्वजनिक भवनों की छतों पर लगायी जाने वाली और दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रिड के अन्तिम सिरों वाले हिस्सों में वितरित ग्रिड टी एवं डी प्रणालियां थीं। इसके अतिरिक्त, 25 किलोवाट की दो अन्य परियोजनाएं कोयम्बटूर के एस.एन. पलायम और एस.जी. पलायम गाँवों में शुरू की गई हैं। पश्चिम बंगाल के सागर द्वीप में सौर फोटोवोल्टाइक ऊर्जा प्रणालियों के उपयोग से सौर ऊर्जा उपयोग में लायी जा रही है। सौर फोटोवोल्टाइक ऊर्जा संयंत्र की 26 किलोवाट की क्षमता का एक संयंत्र लक्षद्वीप में लगाया गया है।

इसी तारतम्य में भाप पैदा करने के लिए सौर ऊर्जा संकेद्रण संग्राहक लगाए गए हैं। उल्लेखनीय है कि खाना बनाने के लिए विश्व की सबसे बड़ी सौर वाष्प प्रणाली आंध्र प्रदेश में तिरूमला में स्थापित की गई। गाँवों में डिश और कूकर को भी बढ़ावा दिया जा रहा है। सौर ऊर्जा से हवा को गर्म कर उससे कृषि एवं औद्योगिक उत्पादों को सुखाने की प्रणाली भी इस्तेमाल की जा रही है। इससे पारम्परिक ईंधन की काफ़ी बचत हुई है। फोटोवोल्टाइक प्रदर्शन और उपयोग कार्यक्रम के अंतर्गत देशभर में दुर्गम स्थानों में स्थित गाँवों और बस्तियों में भी बिजली उपलब्ध कराई गई है। खाना पकाने, सुखाने और ऊर्जा को परिष्कृत करने के लिए उद्योगों और संस्थानों में सौर एयर हीटिंगस्टीम जनरेटिंग प्रणाली को बढ़ावा दिया जा रहा है। सौर ऊर्जा प्रणाली को अनिवार्य बनाने के लिए इमारत उपनियमों में संशोधन किया गया है एवं प्रावधान किया गया है कि ऐसी इमारतें और हाउसिंग परिसर बनाए जाएं जहां पानी गर्म करने के लिए सौर ऊर्जा का इस्तेमाल हो। परंपरागत बिजली संरक्षण के साथ सर्दियों और गर्मियों में आरामदायक और बेहतर जीवन-स्तर के लिए ऐसी इमारतों के निर्माण को बढ़ावा दिया जा रहा है जिनमें सौर ऊर्जा से जुड़ी प्रणालियों को लगाया जा सके। आने वाले कुछ हज़ार वर्षों में ही हमारे परम्परागत ऊर्जा स्रोत समाप्त हो जायेंगे। हमें इन ऊर्जा स्रोतों की बचत करना चाहिए और सोचना चाहिए कि जिसे बनाने में प्रकृति ने लाखों वर्ष लगाएं है उसे हम कुछ ही मिनटों में समाप्त कर देते हैं। यह तभी सम्भव है जब हम बख़ूबी अक्षय ऊर्जा के उपयोग करना सीख लें।

मच्छरों के प्रति जागरूकता

सम्पूर्ण विश्व में 20 अगस्त को विश्व मच्छर दिवस (World Mosquito Day) मनाया जाता है। यह दिवस सर रोनाल्ड रोस के मलेरिया रोग के कारक को खोजने पर मनाया जाता है। रोनाल्ड रोस ने ही सबसे पहले बताया था कि मादा मच्छर के कारण मलेरिया रोग होता है। रोनाल्ड रोस की यह खोज मानव समाज के लिए बहुत ही बड़ी खोज साबित हुई और इस खोज की घोषणा के दिन को विश्व मच्छर दिवस के रूप में मनाया जाने लगा। विश्व मच्छर दिवस सुनने में बड़ा अजीब लगता है कि भला इस दिवस को मनाने की क्या आवश्यकता है, लेकिन कई ख़तरनाक रोगों के वाहक मच्छर चिंता का विषय हैं और इनके प्रति जागरूकता की ज़रूरत है। मच्छर के कारण सिर्फ मलेरिया ही नहीं बल्कि और भी कई जानलेवा रोग फैलते है, जिनकी जानकारी होना और जिनसे बचना बहुत आवश्यक है। भारत में मलेरिया के अतिरिक्त डेंगू, जापानी इंसेफ़िलाइटिस और चिकगुनिया जैसे कई रोग है जिनके वाहक मच्छर हैं। मच्छर एक हानिकारक कीट है, जो संसार के प्राय सभी भागों में पाया जाता है। मच्छर एकलिंगी जन्तु हैं यानी नर और मादा मच्छर अलग-अलग होते हैं। सिर्फ मादा मच्छर ही मनुष्य या अन्य जन्तुओं के रक्त चूसती है, जबकि नर मच्छर पेड़-पौधों का रस चूसते हैं। मच्छर गड्ढ़े, तालाबों, नहरों तथा स्थिर जल के जलाशयों के निकट अंधेरी और नम जगहों पर रहते हैं।

मलेरिया सबसे प्रचलित संक्रामक रोगों में से एक है तथा भंयकर जन स्वास्थ्य समस्या है, जो प्रत्येक वर्ष यह 51.5 करोड़ लोगों को प्रभावित करता है। यह रोग लगभग तीस लाख लोगों की मृत्यु का कारण बनता है। यह मुख्य रूप से अमेरिका, एशिया और अफ्रीका महाद्वीपों के उष्ण तथा उपोष्ण कटिबंधी क्षेत्रों के लोगों को अपना शिकार बनाता है। यह रोग प्लास्मोडियम (Plasmodium) गण के प्रोटोज़ोआ परजीवी के माध्यम से फैलता है। केवल चार प्रकार के प्लास्मोडियम परजीवी मनुष्य को प्रभावित करते है जिनमें से सर्वाधिक ख़तरनाक प्लास्मोडियम फैल्सीपैरम (Plasmodium falciparum) तथा प्लास्मोडियम विवैक्स (Plasmodium vivax) माने जाते हैं, साथ ही प्लास्मोडियम ओवेल (Plasmodium ovale) तथा प्लास्मोडियम मलेरिये (Plasmodium malariae) भी मानव को प्रभावित करते हैं। मलेरिया के परजीवी का वाहक मादा एनोफ़िलेज़ (Anopheles) मच्छर है। इसके काटने पर मलेरिया के परजीवी लाल रक्त कोशिकाओं में

प्रवेश कर के बहुगुणित होते हैं जिससे रक्तहीनता (एनीमिया) के लक्षण उभरते हैं। इसके अलावा अविशिष्ट लक्षण जैसे कि बुखार, सर्दी, उबकाई और ज़ुखाम जैसे लक्षण भी देखे जाते हैं। गंभीर मामलों में मरीज बेहोशी में जा सकता है और इलाज न होने पर मृत्यु भी हो सकती है।

दूसरा है डेंगू – जिससे खतरनाक रूप से निम्न रक्तचाप होता है। डेंगू रक्तस्रावी बुख़ार है, जिसके कारण रक्त वाहिकाओं में रक्तस्राव या रिसाव होता है तथा रक्त प्लेटलेट्स, जिनके कारण रक्त जमता है, का स्तर कम होता है। पिछले कुछ वर्षों से डेंगू के संक्रमण उग्र होते जा रहे हैं। डेंगू का इलाज समय पर करना बहुत ज़रुरी होता हैं, मच्छर डेंगू विशाणु को संचरित करते हैं। डेंगू बुख़ार को हड्डीतोड़ बुख़ार के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि इससे पीड़ित लोगों को इतना अधिक दर्द हो सकता है कि जैसे उनकी हड्डियाँ टूट रही हों। डेंगू बुख़ार के कुछ लक्षणों में बुख़ार सिरदर्द, त्वचा पर चेचक जैसे लाल चकत्ते तथा मांसपेशियों और जोड़ों में दर्द शामिल हैं। कुछ लोगों में, डेंगू बुख़ार एक या दो ऐसे रूपों में हो सकता है जो जीवन के लिये ख़तरा हो सकते हैं।

तीसरा है चिकिनगुनिया – चिकनगुनिया लम्बे समय तक चलने वाला जोड़ों का रोग है जिसमें जोड़ों में भारी दर्द होता है। इस रोग का उग्र चरण तो मात्र दो से पाँच दिन के लिये चलता है किंतु जोडों का दर्द महीनों तक बना रह सकता है, जो कि व्यक्ति की उम्र पर निर्भर करता है। चिकनगुनिया विषाणु एक अर्बोविषाणु है जिसे अल्फाविषाणु परिवार का माना जाता है। यह मानव में एडीज़ मच्छर के काटने से प्रवेश करता है। यह विषाणु ठीक उसी लक्षण वाली बीमारी पैदा करता है जिस प्रकार की स्थिति डेंगू रोग मे होती है। रोग के लक्षणों में बुख़ार, धड़ और फिर हाथों एवं पैरों पे चकते दिखाई देना, शरीर के विभिन्न जोडों मे पीड़ा होना शामिल हैं। इसके अतिरिक्त सिरदर्द, प्रकाश से भय लगने के साथ आँखों मे पीड़ा भी होती है। संक्रमण के दौरान अनिद्रा तथा निर्बलता भी शामिल रहती है। इस रोग से नेत्र संक्रमण भी हो सकता है। पैरों की सूजन भी देखी जाती है जिसका कारण दिल, गुर्दे तथा यकृत रोग से नहीं होता है। विषाणु अल्फाविषाणु ओन्योगोंग विषाणु से निकटवर्ती रूप से संबंध रखता है, जो रिवर बुखार तथा इनसेप्टाइलिस फैलाता है। यह रोग सामान्य रूप से एडीज़ एजेपटी नामक मच्छर से फैलता है किंतु पास्चर संस्थान ने अध्ययन से बताया है कि 2005-06 मे इसने उत्परिवर्तन (Mutation) करके एडीज़ एल्फोपिक्टस जिसे टाइगर मच्छर भी कहते हैं, के माध्यम से फैलने की क्षमता प्राप्त कर ली है। इस उत्परिवर्तन से रोग के प्रसार का ख़तरा और भी बढ़ गया है।



चिकनगुनिया लम्बे समय तक चलने वाला जोड़ों का रोग है जिसमें जोड़ों में भारी दर्द होता है। इस रोग का उग्र चरणमात्र दो से पाँच दिन के लिये चलता है किंतु जोडों का दर्द महीनों तक बना रह सकता है, जो कि व्यक्ति की उम्र पर निर्भर करता है। चिकनगुनिया विषाणु एक अर्बोविषाणु है जिसे अल्फाविषाणु परिवार का माना जाता है। यह मानव में एडीज़ मच्छर के काटने से प्रवेश करता है।

पहला सुख निरोगी काया



भारत में 29 अगस्त को राष्ट्रीय खेल दिवस (National Sports Day) मनाया जाता है। यह दिवस हॉकी के महान खिलाड़ी मेजर ध्यानचंद के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए उनकी जयंती के अवसर पर मनाया जाता है। दुनिया भर में हॉकी के जादूगर के नाम से प्रसिद्ध भारत के महान व कालजयी हॉकी खिलाड़ी मेजर ध्यानचंद सिंह, जिन्होंने न सिर्फ भारत को ओलंपिक खेलों में स्वर्ण पदक दिलवाया बल्कि हॉकी को एक नई ऊँचाई तक ले गए। मेजर ध्यानचंद का जन्म 29 अगस्त, 1905 को इलाहाबाद में हुआ था। ज्ञात रहे क्रिकेट में जो स्थान डॉन ब्रैडमैन, फुटबॉल में पेले और टेनिस में रॉड लेवर का है, हॉकी में वही स्थान ध्यानचंद का है। एक प्राचीन कहावत है कि ''पहला सुख निरोगी काया।'' इसका अर्थ है कि सुखी जीवन का भोग करने के लिए स्वस्थ्य शरीर का होना बहुत ज़रूरी है और शरीर तभी स्वस्थ रह सकता है जब शरीर के सभी अंग सही ढंग से काम करें। शरीर को स्वस्थ रखने में खेलों की विशेष भूमिका होती है। जीवन में खेल ही हैं जो हमारे शारीरिक, सामाजिक, मानसिक, बौद्धिक और मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य गुणों के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। खेल बहुत तरीकों से हमारे जीवन को पोषित करते हैं। ये हमें अनुशासन और अपने लक्ष्य को प्राप्त करने लिए निरंतर कार्य और अभ्यास करना सिखाते हैं। खेल दिवस पर देश में स्कूल और कॉलेजों में विभिन्न आयोजन किये जाते हैं, क्योंकि खेल विद्यार्थियों के बीच शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने का अभिन्न हिस्सा है। खेल और शिक्षा दोनों ही, एक साथ जीवन में सफलता प्राप्त करने के सबसे अच्छे तरीक़े हैं।

research.org@rediffmail.com





छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री डॉ.रमन सिंह ने डॉ.सी.वी.रामन् विश्वविद्यालय को उच्च शिक्षा के लिए छत्तीसगढ़ का गौरव एवार्ड प्रदान किया है। विश्वविद्यालय को तकनीकी शिक्षा और कौशल विकास के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करने के लिए गौरव सम्मान प्रदान किया गया है। यह एवार्ड प्रदेश की राजधानी रायपुर में देश के प्रतिष्ठित मीडिया ग्रुप इंडिया न्यूज चैनल के गरिमामयी कार्यक्रम में प्रदान किया गया।



डॉ.सी.वी.रामन् विश्वविद्यालय को प्रदेश मुख्यमंत्री डॉ.रमन सिंह ने कॅरियर प्रोग्रेशन एंड प्लेसमेंट के लिए सम्मानित किया है। आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र में स्थापित डॉ.सी.वी.रामन् विश्वविद्यालय ने कॅरियर प्रोग्रेशन व उनके प्लेसमेंट से युवाओं को नई ऊँचाईयों तक पहुँचाया है। यह आयोजन न्यूज-18 द्वारा आयोजित किया गया था।



डॉ.सी.वी.रामन् विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो.आर.पी.दुबे राजधानी रायपुर में एलिट्स द्वारा आयोजित एजुकेशन कॉनक्लेव में चेयरपर्सन के रूप में शामिल हुए। यह एजुकेशन कॉनक्लेव डिजीटल लर्निंग विषय पर आयोजित किया गया था। एजुकेशन कॉनक्लेव में देश के विख्यात शिक्षाविदों ने शिरकत की।

दो दिवसीय नेशनल कांफ्रेंस : देश भर के वैज्ञानिकों ने किया विचार विमर्श

डॉ. सी वी रमन विश्वविद्यालय में एडवांसमेंट एंडग्लोबलाइजेशन ऑफ केमिकल साइंस फॉर मैन मटेरियल एंडइन्वायरमेंट विषय पर आयोजित नेशनल कांफ्रेंस के दो दिन तक प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने भारत में बढ़ते प्रदूषण और इससे होने वाले दुष्प्रभाव के बारे में विस्तार से मंथन किया। नेशनल कांफ्रेंस में निष्कर्ष निकाला गया कि आज जिस स्तर पर पर्यावरण प्रदूषण पहुँच चुका है अब किताबों, सभाओं, बैनर, पोस्टर से बाहर आकर सड़क पर सच्चे मन से काम करने की जरूरत है। तभी हम पर्यावरण की रक्षा कर सकेंगे। यह प्रदूषण अब मानव जीवन के लिए संकट के अंतिम पड़ाव तक पहुँच चुका है। कॉन्फ्रेंस में उपस्थित सभी ने पर्यावरण संरक्षण का संकल्प लिया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित छत्तीसगढ़ लोक सेवा आयोग के परीक्षा नियंत्रक डॉ.ए.के.मिश्रा ने शोधार्थियों और विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करते हुए कहा कि भाग्य कुछ नहीं होता यह एक सीढ़ी मात्र है जो कर्म के बाद की सीढ़ी है। उन्होंने सभी विद्यार्थियों से कहा कि पर्यावरण प्रदूषण विषय गंभीर है, लेकिन यदि हम सब मिलकर इस ओर कार्य करें तो वह दिन दूर नहीं होगा जब हम इस संकट से उभर भर जायेंगे । इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित पर्यावरण शिक्षण मंडल के वैज्ञानिक डॉ.एम.पी.मिश्रा ने कहा कि अब वह समय आ गया है पर्यावरण हमारे जीवन का आधार है। पर्यावरण मनुष्य जीवनके अंग-अंग में रचा बसा हुआ है। इसके बिना इस संसार का कोई भी व्यक्ति जीवन की कल्पना नहीं कर सकता है। पर्यावरण प्रदूषण से रक्षा के लिए अब तक हम सिर्फ सोच तक ही सीमित रह गए थे , लेकिन अब सोच से ऊपर उठकर काम करने का वक्त आ गया है । उन्होंने कहा कि पर्यावरण की रक्षा के लिए किताब से बाहर आकर अब कार्य करने की जरूरत है। मिश्रा ने कहा कि पर्यावरण के प्रदूषण के कारण वायु, जल, वातावरण के साथ ऐतिहासिक धरोहर भी प्रभावित हैं। इनके कारण अब ऐतिहासिक धरोहर भी ढहने की कगार पर हैं। उन्होंने इस आयोजन की प्रशंसा भी की। कार्यक्रम में एक दिन तक शामिल हुए शोधार्थियों को प्रमाण पत्र अतिथियों ने प्रदान किया। इस अवसर पर आयोजित एग्जीबिशन में प्रथम द्वितीय तृतीय विजय प्रतिभागियों को भी अतिथियों ने पुरस्कृत किया। कार्यक्रम की अंतिम कड़ी में समन्वयक डॉ. मनीष उपाध्याय ने दो दिवसीय नेशनल कांफ्रेंस का सार प्रस्तुत किया। इस अवसर परबड़ी संख्या में सभी विभागों के विभागाध्यक्ष विभागाध्यक्ष प्राध्यापक अधिकारी-कर्मचारी शोधार्थी और छात्र छात्राएं उपस्थित थे।

रबिंद्रनाथ टैगोर यूनिवर्सिटी को 'मोस्ट इनोवेटिव यूनिवर्सिटी ऑफ सेंट्रल इंडिया' का सम्मान



सुशिक्षा सम्मान समारोह में रबिन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय पूर्ववर्ती आईसेक्ट विश्वविद्यालय को मोस्ट इनोवेटिव यूनिवर्सिटी ऑफ सेंट्रल इंडिया अवार्ड 2018 से सम्मानित किया गया। यह सम्मान विश्वविद्यालय को निरंतर नये इनोवेशन्स के लिये प्रदान किया गया है। आईसेक्ट के निदेशक एवं विश्वविद्यालय संचालन समिति के सदस्य सिद्धार्थ चतुर्वेदी, विश्वविद्यालय के कुलसचिव डॉ. विजय सिंह और कोर रिसर्च ग्रुप के समन्वयक प्रो.वी.के.वर्मा ने यह पुरस्कार प्राप्त किया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि मध्य प्रदेश के माननीय मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान के हाथों यह सम्मान दिया गया। इस गरिमामय अवसर पर आईसेक्ट के निदेशक सिद्धार्थ चतुर्वेदी ने कहा कि रबिन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय अपनी स्थापना से ही अनुसंधान एवं कौशल आधारित शिक्षा का केन्द्र रहा है। साथ ही विश्वविद्यालय ने नवाचार पर विशेष रूप से रेखांकित किया है। विश्वविद्यालय नये बेंचमार्क्स सेट कर रहा है। देश के पहले कौशल आधारित इस विश्वविद्यालय में 32 कौशल पाठ्यक्रमों का संचालन किया जा रहा है। रबिन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के कुलसचिव डॉ. विजय सिंह ने कहा कि हम ऐसा वातावरण तैयार कर रहे हैं जहाँ विद्यार्थियों की रचनात्मकता को बढ़ावा मिलता है। विश्वविद्यालय में 9 सेंटर ऑफ एक्सीलेंस, अटल इन्क्यूबेशन सेंटर और आई.ओ.टी. लैब की स्थापना की गई है। विश्वविद्यालय मानव संसाधन विकास मंत्रालय के उन्नत भारत अभियान प्रोजेक्ट को सफलतापूर्वक संचालित कर रहा है। उद्यमिता को बढ़ावा दिया जा रहा है। विश्वविद्यालय परिवार सम्मानित महसूस कर रहा है कि हमारे प्रयासों को इतने प्रतिष्ठित प्लेटफार्म पर सराहा गया। इससे हमें आगामी वर्षों में विश्व पटल में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के लिए प्रेरणा मिलती रहेगी। विश्वविद्यालय को अनेक अवसरों पर राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है। इस मौके पर विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो.ए.के. ग्वाल ने भी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए बधाई दी।

रबिंद्रनाथ टैगोर यूनिवर्सिटी का उन्नत भारत अभियान में चयन



रबिन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय का चयन मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत शासन के उन्नत भारत अभियान के अंतर्गत किया गया है। विश्वविद्यालय को अभियान की तकनीकी श्रेणी में चयनित किया गया है। इस अभियान के अंतर्गत विश्वविद्यालय ने रायसेन जिले के पाँच गाँव मेंदुआ, तिलेंडी, गोकुलाकुंडी, चांदलाखेड़ी व कीरत नगर गोद लिये हैं। इसी तारतम्य में विश्वविद्यालय में इन गाँवों के सरपंच व प्रतिनिधियों की बैठक आयोजित की गई। विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं, विद्यार्थियों और शिक्षकों ने गाँव की मूलभूत समस्याएं जैसे कृषि, पेयजल, शिक्षा, स्वच्छता, सड़क और सामाजिक समस्याएं जैसे गंभीर विषयों पर सारगर्भित चर्चाएं की। विश्वविद्यालय इन गाँवों में प्रौद्योगिकी व जनभागीदारी के माध्यम से विकास की गतिविधियों का संचालन करेगा। इस अवसर पर सरपंच सूरज सिंह, राजेन्द्र काकोडिया, राजेश मालवीय, ग्राम मेंदुआ से देवेन्द्र लोवंशी, सेंटर फॉर इन्क्यूबेशन, इंटरप्रेन्योरशिप एण्ड स्टार्ट अप के निदेशक नितिन वत्स, उन्नत भारत अभियान प्रकोष्ठ के समन्वयक अभिनव दुबे, विश्वविद्यालय के परियोजना विभाग से पदमेश चतुर्वेदी, विज्ञान संचार केन्द्र के निदेशक राग तेलंग उपस्थित थे। इस बैठक में आगे की कार्ययोजना तैयार कर ली गई है। इसके तहत पाँचों गाँवों में बेस लाइन सर्वे संपन्न किया जाएगा। विश्वविद्यालय के कुलसचिव डॉ. विजय सिंह के अनुसार विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा, कौशल विकास और शोध कार्यों पर विशेष रूप से केन्द्रित है। विश्वविद्यालय की राष्ट्रीय सेवा योजना इकाई रायसेन जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में लगातार कार्य कर रही है। उन्नत भारत अभियान में विश्वविद्यालय निश्चित ही अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' विज्ञानकथा पुरस्कार प्रतियोगिता

विज्ञानकथा, विज्ञान-गल्प या साइंस-फिक्शन एक लोकप्रिय विधा है। हिन्दी में विज्ञानकथाओं पर बहुत ही महत्वपूर्ण काम हुआ है। कई साइंस फिक्शन फिल्मों की अपार सफलता इस बात का परिचायक है। विज्ञानकथाएँ जीवन-जगत के रहस्यों को तार्किक, प्रामाणिक और कथात्मक ढंग से पाठकों के सामने प्रस्तुत करती हैं।

विज्ञानकथा लेखन को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से हम 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए विज्ञानकथा पुरस्कार' प्रतियोगिता आयोजित कर रहे हैं। अगर आपकी रुचि विज्ञान लेखन में है और आप विज्ञानकथा लिखते हैं तो इस प्रतियोगिता में आपका स्वागत है। आप अपनी विज्ञानकथा डाक अथवा मेल द्वारा 30 सितम्बर 2018 तक 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' कार्यालय में भेज सकते हैं। प्रतियोगिता के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं का अध्ययन-अनुकरण आवश्यक है :

- रचना 3000 शब्दों से अधिक न हो एवं टाइप की हुई हो।
- रचनाकार द्वारा रचना का मौलिक एवं अप्रकाशित, अप्रसारित होने का स्वघोषित प्रमाण पत्र संलग्न हो।
- पुरस्कृत विज्ञानकथाओं को 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' में प्रकाशित किया जाएगा। इन रचनाओं का कॉपीराइट 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' का होगा।
- प्रतिभागी यह सुनिश्चित कर लें कि वे जो प्रविष्टि विज्ञानकथा प्रतियोगिता में भेज रहे हैं, वह अन्यत्र प्रेषित अथवा प्रकाशित न हो।
- पुरस्कार का निर्णय 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' निर्णायक मंडल का होगा जो कि सभी प्रतिभागियों के लिए बाध्यकारी होगा एवं इस संबंध में कोई दावा/आपत्ति मान्य नहीं होगी।

पुरस्कार इस प्रकार होंगे :

- प्रथम पुरस्कार - 31,000 (इकतीस हजार रुपये)
- द्वितीय पुरस्कार - 21,000 (इक्कीस हजार रुपये)
- तृतीय पुरस्कार - 11,000 (ग्यारह हजार रुपये)

संपर्क :

'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए विज्ञानकथा पुरस्कार प्रतियोगिता'
संपादक, इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए
आईसेक्ट लिमिटेड, स्कोप कैम्पस, एन.एच.–12, होशंगाबाद रोड, मिसरोद, भोपाल–462047
फोन : 0755-6766166 (डेस्क), 0755-6766101, 0755-6766147 (रिसेप्शन), 0755-6766110(फैक्स)
e-mail : electroniki@electroniki.com, electronikiaisect@gmail.com

अधिक जनकारी के लिए संपर्क सूत्र

- राग तेलंग - 9425603460
- मोहन सगोरिया - 9630725033
- रवीन्द्र जैन - 8889556622